

ISSN 2320-5601 Pairokar

पैरोकार

साहित्य, शिक्षा, कला व संस्कृति की त्रैमासिकी

वर्ष : 10 • अंक : 3-4 • (संयुक्तांक) जुलाई-दिसम्बर, 2021 • RNI-WBHIN/2012/44200



वर्ष 10 • अंक 3-4 • (संयुक्तांक) जुलाई-दिसम्बर 2021
अंतर्राष्ट्रीय पीयर रिव्यूड पत्रिका

प्रधान संपादक : अनवर हुसैन	
संपादकीय सलाहकार : डॉ. सुनील कुमार 'सुमन'	
प्रबंध संपादक : मनोज कुमार	
कार्यकारी संपादक : डॉ. मोहम्मद आसिफ आलम	
सहायक संपादक : डॉ. ललित कुमार	
अंतर्राष्ट्रीय सदस्य :	
डॉ. मोरवे रोशन के : यूनिवर्सिटी ऑफ लॉड्ज, पोलैंड और बांगोर यूनिवर्सिटी, यूके	
पीयर रिव्यूड टीम :	
प्रो. एमजे वारसी : अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़,	
डॉ. श्रीधरम : आरएसडी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,	
डॉ. संजय जायसवाल : विद्यासागर विश्वविद्यालय,	
मेदिनीपुर, प. बंगाल, डॉ. उमा यादव : महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, डॉ. अनीश कुमार :	
द पर्सेप्रेटिव इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एंड ह्यूमैनिटीज	
संपादक मंडल: सेराज खान बातिश, डॉ. विवेक साव,	
डॉ. श्रीनिवास सिंह यादव, डॉ. चक्रधर प्रधान, नारायण दास, बृजेश प्रसाद, सदाम हुसैन	
टाइप सेटिंग : रामजी पंडित	

विषय सूची

संपादकीय	2
— अनवर हुसैन	
आदिवासी समाज और मोबाइल संचार	4
— डॉ. ललित कुमार	
मुक्तिपर्व में अभिव्यक्त दलित समाज की संघर्ष गाथा का आलोचनात्मक मूल्यांकन	11
— पूर्विका अत्री	
मुख्यधारा मीडिया और आदिवासी समाज	15
— रीना कुमारी	
स्वाधीन हिंदी काव्य का विकास	21
— मोहन कुमार	
ओमप्रकाश वाल्मीकि : साहित्य के संदर्भ में दलित चेतना — नारायण दास	27
कटघेरे से बाहर का कवि जानकी वल्लभव शास्त्री	30
— डॉ. अणिमा	
विश्व साहित्य में उपन्यास का उदय (यूरोपीय एवं भारतीय संदर्भ) — नगीना लाल दास	33
भारतीय कृषि संकट के विविध आयाम	38
— संदीप कुमार यादव	
कहानी :	43
शुभचिंतक — डॉ. उषा शॉ	
कविता :	46
कर्म पथ — नीतू कुमारी	
चिड़िया अब नहीं आती — गणेशी लाला	
जल जंगल और जमीन — डॉ. रमेश यादव	
84 बटा 2002 के भाज्य-अभाज्य में	

संपादकीय कार्यालय

स्वास्तिक अपार्टमेंट

हाईटेक कम्प्युनिकेशन्स एण्ड कन्सल्टेन्ट्स
पीरतला, आगरपाड़ा, कोलकाता-700109

मोबाइल : 9831674489

E-mail ID - pairokarpublication@gmail.com

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक व मुद्रक रोजायदा खातून द्वारा स्वास्तिक अपार्टमेंट, पीरतला, आगरपाड़ा, कोलकाता-700109 से प्रकाशित व हाईटेक कम्प्युनिकेशन्स एण्ड कन्सल्टेन्ट्स, पीरतला, आगरपाड़ा, कोलकाता-700109 से मुद्रित।

संपादक : रोजायदा खातून

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्व स्वयं रचनाकारों का है, उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी तरह का विवाद कोलकाता न्याय क्षेत्र के अधीन ही होगा।

संपादन और प्रबंधन के सभी पद अवैतनिक

मूल्य एक प्रति- रु. 25/- वार्षिक सहयोग राशि- रु. 400/-

संस्थाओं के लिए : रु. 500/-, इस अंक का मूल्य रु. 50/-

अभिव्यक्ति की आजादी के क्या कहने!

दुनिया भर में कभी अभिव्यक्ति की आजादी के लिए आवाजें उठा करती थीं। कई बार तो अभिव्यक्ति की आजादी पर अंकुश लगाने के लिए सरकारों पर आरोप तक लग चुके हैं। मेरे ख्याल से सूचना क्रांति के इस दौर में किसी को अभिव्यक्ति की आजादी को लेकर किसी तरह की शिकायत नहीं होनी चाहिए। किसी को भी सोशल मीडिया पर कुछ भी पोस्ट करने की आजादी है। टेक्स्ट में या ऑडियो-वीडियो फार्म में सामग्री कोई भी सोशल मीडिया पर कभी भी पोस्ट कर सकता है और उसे प्रचारित प्रसारित कर सकता है। इस तरह की सामग्री पोस्ट करने और उसे प्रसारित करने में न ही प्रेस एक्ट और न ही सेंसर बोर्ड के नियम ही आड़े आ रहा है। हाँ, कभी कभी सोशल मीडिया पर आपत्तिजन सामग्री पोस्ट करने पर साइबर ला के तहत कार्रवाई की बातें जरूर सुनी जाती हैं। लेकिन यह अभिव्यक्ति की आजादी को दमन करने से संबंधित नहीं है। सूचना क्रांति के इस दौर में अभिव्यक्ति की इतनी खुली आजादी पहली कभी नहीं मिली थी। जाहिर है इसमें तकनीकी और इंटरनेट का अहम योगदान है।

इंटरनेट के अविष्कार से पहले अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम मुद्रित साहित्य ही था। अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में प्रेस और छापाखाना के प्रचलन बढ़ने पर मुद्रित साहित्य की ताकत बढ़ी। समाचार पत्रों के साथ पुस्तकें और अन्य पत्र-पत्रिकाएं अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में उभरी। बाद में रेडियो से भी खबरों का प्रसारण आसान हुआ लेकिन इस पर कुछ हद तक सरकारी नियंत्रण बना रहा।

— अनवर हुसैन

इंटरनेट युग के पहले किसी को भी अपने विचार, कहानी, कविता या अन्य साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित कराने के लिए मुद्रित माध्यमों का ही सहारा लेना पड़ता था। समाचार पत्रों से लेकर पत्रिकाओं तक में कोई भी रचनाएं प्रकाशित करने से पहले संपादकीय विभाग के स्तर पर उसकी परख की जाती थी। पुस्तकें प्रकाशित करने या कोई अच्छा उपन्यास प्रकाशित कराने के लिए लेखक को कुछ इसी तरह की कठिन प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता था। कहने का मतलब यह है कि साहित्यिक कृतियां कुछ मानकों पर खरा उतरती थीं तभी वह प्रकाशित होती थीं और पाठकों के समक्ष आती थीं।

लेखक भी गर्व से कहते थे कि उनकी रचना अमूक पत्रिका में प्रकाशित हुई है या अमूक प्रकाशन ने उनका उपन्यास प्रकाशित किया है। रनचा की प्रमाणिकता और गुणवत्ता पत्रिका और संबंधित प्रकाशन संस्थान से जुड़ा होता था। लेकिन आज किसी नए लेखक को अपना उपन्यास या कहानी-कविता प्रकाशित करने के लिए किसी पत्रिका के संपादक की स्वीकृति का इंतजार करने की जरूरत नहीं है। कोई भी नया लेखक अपना उपन्यास भी धारावाहिक रूप में सोशल मीडिया पर जब चाहे तब प्रकाशित कर सकता है। लेकिन जैसा कि सब जानते हैं कि मुफ्त में मिली हुई चीज की कोई अहमित नहीं होती है, चाहे वह कितनी भी कीमती क्यों न हो। सोशल मीडिया भी ऐसे ही मुफ्त में प्राप्त एक माध्यम है। इसलिए यहां मुफ्त में मिलने वाली सारी सूचनाएं संदेह के घेरे में होती हैं। सोशल मीडिया पर कुछ अच्छी सूचनाएं या सामग्री मिलती हैं तो यह अपवाद है। करोड़ों

अरबों खर्च कर सोशल मीडिया की जाल फैलाने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों का इसमें अपना व्यवसायिक हित छुपा है जिससे आम उपभोक्ता अनजान है। सूचना क्रांति के इस दौर में आम नागरिकों की सबसे अधिक कीमती निजता और गोपनीयता बोल कर कुछ नहीं रह गई है। सोशल मीडिया के जरिए उपयोकर्ताओं के डाटा बहुत आसानी से किसी के पास बंधक हो रहा है जिसमें उसका ईमेल आईडी, मोबाइल नंबर और अन्य बहुत सारी निजी जानकारियां शामिल हैं। सोशल मीडिया का विशाल नेटवर्क फैलानी वाली कंपनियां उपयोगकर्ताओं के डाटा का इस्तेमाल अपने व्यवसियक हित में करती हैं।

खोटा सिक्का के अधिकता से जैसे असली सिक्का का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है उसी तरह आज सोशल मीडिया के दौर में सही और प्रमाणिक सूचना भी संदेह के घेरे में आ गई है। विभिन्न डिजिटल सूचना माध्यमों से जो सूचनाएं हमें तीन इंच की डीवाइस यानी स्मार्ट फोन में बहुत आसानी से उपलब्ध हैं, उसमें क्या गलत है और क्या सही इसकी पहचान करना बड़ा मुश्किल है। क्षण में कुछ भी सोशल मीडिया पर प्रकाशित कीजिए और कुछ क्षण में ही उसे दूर-दूर तक यहां तक की भौगोलिक सीमाएं लांघ कर प्रचारित प्रसारित करने से अच्छा अभिव्यक्ति का समय और भला क्या हो सकता है! लेकिन जरा सोचिए जो बहुराष्ट्रीय कंपनियां मुफ्त में आपको सोशल मीडिया जैसे अभिव्यक्ति का इतना बड़ा प्लेटफार्म मुफ्त में उपलब्ध करा रही है, उनका उद्देश्य कोई समाज सेवा या समुदायिक विकास नहीं है। उनका उद्देश्य मुनाफा कमाना है। जितने लोग सोशल मीडिया से जुड़ेंगे और जितना ज्यादा उस पर सक्रिया रहेंगे उतना ज्यादा कंपनियों का मुनाफा होगा। आप सोच रहे होंगे

कि मुफ्त में सोशल मीडिया यूज कर रहे हैं तो यह आपका भ्रम है। दरअसल सोशल मीडिया पर अति सक्रिय होकर आप यूज हो रहे हैं और कई तरह की मानसिक बीमारियों का निमंत्रण भी दे रहे हैं। बड़े पूँजीपतियों या बड़े संपन्न लोगों की सोशल मीडिया पर उपस्थिति नहीं है। मध्यवर्ग और आम लोगों के लिए यह अभिव्यक्ति का मुफ्त और सहज प्लेटफार्म है। इसलिए सोशल मीडिया को वंचितों का मीडिया भी कहा जा रहा है। वंचितों के सक्रिय होने से सोशल मीडिया और सूचनाएं प्रसारित करने वाली कंपनियों को तो तत्कालिक फायदा हो जाता है लेकिन यूजर को भी कोई लाभ मिलता होता होगा यह सोचना गलत है। सोशल मीडिया पर आम यूजर अपने से जुड़ी खुशी, गम और उत्साह की तस्वीरें और टैक्सट मैसेज पोस्ट कर ही आत्मसुग्ध रहना रहना चाहते हैं। आम लोगों का यही अत्मसम्मोहन उन्हें सोशल मीडिया पर सक्रिय रहने के लिए प्रेरित करता है जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। आम मध्यवर्गीय लोग यदि सोशल मीडिया पर सहती बौद्धिकता का प्रदर्शन कर खुश रहना चाहते हैं तो भला इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। लेकिन सोशल मीडिया पर सतही बौद्धिकता प्रदर्शन करने की होड़ में आपसी द्वेष, कलह, घृणा और नफरत का भाव पैदा होता है तो यह गलत है। अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर समाज में घृणा और नफरत फैलाने की छूट किसी को नहीं मिलनी चाहिए।

.....

सारांश :

आज पूरा विश्व एक पॉकेट तथा मोबाइल की चिप में समाया हुआ है। देश के कई आदिवासी बहुल इलाके आज भी ऐसे हैं। जहां सरकारी नीतियां, योजनायें, सड़क, बिजली, शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य जैसी आधारभूत सुविधाएं उनकी पहुंच से कोसो दूर हैं। देश के आदिवासी इलाकों में अब इन समस्याओं को दूर करने में आधुनिक संचार यानी मोबाइल के जरिए उनके रहन—सहन, पढ़ाई लिखाई और उनकी जीवन शैली में बहुत से बदलाव देखने को मिल रहे हैं। मोबाइल क्रांति की शुरुआत होने से देश के हर कोने में मोबाइल की घंटी घर—घर तक बजती हुई सुनाई देती है। राज्य और केंद्र सरकार मिलकर संचार क्रांति के इस अभिनव प्रयास से समुदाय को मुख्यधारा में जोड़ने का काम कर रही हैं। देश में 'सीजीनेट स्वर' और 'मोबाइल वाणी' जैसे प्लेटफार्म आदिवासी समुदाय को उनका हक दिलाने और उनकी मूलभूत समस्याओं का हल करने की कोशिश में लगे हैं। ये दोनों प्लेटफार्म रेडियो, मोबाइल और इन्टरनेट को जोड़कर बनाये गये हैं। जिसने आदिवासी समुदाय के परिवेश को बहुत हद तक बदलने का काम किया है। इसलिए आदिवासी समाज सोशल मीडिया की ताकत की बदौलत ही अपनी आवाज को बुलंद करने में सक्षम है। अब जहां भी उनके हक को छिनने को कोशिश होती है। आदिवासी समुदाय के लोग अब मोबाइल और इन्टरनेट को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। अतः आज का पढ़ा लिखा आदिवासी युवा अब चाहे वो झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश और राजस्थान का ही क्यों न हो? मोबाइल संचार के माध्यम से अपने आंदोलनों को पहले की अपेक्षा और मजबूत

डॉ. ललित कुमार

सहायक प्रोफेसर

पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
आईसेक्ट विश्वविद्यालय हजारीबाग

करने में लगे हैं। इस दिशा में उन्हें कई मामलों में सफलता भी हासिल हुई है।

शब्द बीज़: आदिवासी समाज, भाषा, मोबाइल संचार, इन्टरनेट

प्रस्तावना :

जल, जंगल और जमीन की रहनुमानी करने वाला आदिवासी समुदाय जल के साथ तैरते हुए जीना, जंगल के साथ जीना और जमीन की हरियाली के साथ जीता है। समय के साथ बदलते मौसम में प्रकृति को ईश्वर के रूप में मानना आदिवासी समुदाय की ही पहचान है। आज पूरा विश्व जिस पर्यावरण पर मंडराते खतरे को एक चुनौती के रूप में देख रहा है। वहीं आदिवासी समुदाय प्रकृति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हमेशा एकजुट रहता है। प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षक केवल आदिवासी ही होती है, जबकि बाकि सब जंगलों का दोहन करने में लगे हैं। जल, जंगल और जमीन के इन वारिसों का समाज अपने नियम, कानून, बंधन और आजादी के साथ हजारों साल से जीता आ रहा है, जो किसी भी विषम परिस्थिति में अपनों का साथ नहीं छोड़ते हैं। जगलों में पक्षियों के मधुर संगीत के साथ सूरज, चाँद और सितारों को अपना आराध्य मानते हैं। फूल, पत्तियों और हवाओं के साथ नाचते गाते हैं। मतलब जल है तो ये हैं, जगल है तो ये हैं, जमीन है तो ये हैं और मौसम है तो ये हैं। बदलते वक्त के साथ—साथ मैदानी हवाओं की फिजाओं ने आदिवासी समुदाय के रहन—सहन, उनकी जीवन—शैली और उनके परिवेश में बहुत

से परिवर्तन ला दिए हैं। आज का आदिवासी समुदाय मुख्यधारा के साथ जुड़ना चाहता है, लेकिन एकजुट रहने वाले इस समाज में अब बिखराव देखने को मिल रहा है। उनकी परंपरा और रीति-रिवाजों पर संकट के बादल पसरने लगे हैं। इसीलिए आदिवासी समाज के पुराने और नए संघर्ष अब धीरे-धीरे तेज होते जा रहे हैं। देश में आदिवासी समाज के पलायन का मुद्दा एक बड़ी समस्या के रूप में उभर कर सामने आया है। अगर आदिवासी समुदाय को देश की मुख्यधारा से जोड़ा जाये, तो उनके विस्थापन और पलायन की कभी नौबत नहीं आ सकती हैं, लेकिन उनके विकास के लिए जो भी पैमाने तय किये जाते हैं। उसमें आदिवासियों की भागीदारी न के बराबर होती हैं। जिससे आदिवासी समाज हमेशा अपने को ठगा हुआ महसूस करता है।

आबादी के हिसाब से वर्ष 2011 की जनगणना के आधार पर देश में आदिवासियों की कुल आबादी 8.6 फीसदी है। अगर क्रमवार राज्यों के आधार पर देखे, तो क्रमशः मध्यप्रदेश १४.७%, महाराष्ट्र १०.१% दूर रहते हैं छत्तीसगढ़ का आदिवासी बैगा समुदाय, जिनकों विकास की मुख्यधारा से जोड़ना सरकार के लिए बेहद चुनौतीपूर्ण था। क्योंकि सुविधाओं के अभाव और गरीबी के चलते इनके हालात बदहाल थे। किसी तरह की दुर्घटना या स्वास्थ्य खराब हो जाने पर मरीज को सही समय पर इलाज नहीं मिल पाता था, क्योंकि इन लोगों को सही समय पर सूचना नहीं मिल पाती थी। छत्तीसगढ़ के कवर्धा जिले में ऐसे समुदाय की कमी नहीं है, जो आज भी वनांचलों में रहकर जीवन जी रहे हैं। इनके पास मूलभूत सुविधाओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। अत्याधिक पिछड़ने का कारण छात्र-छात्राओं के पास फोन का न होना उनके पीछे होने का एक बड़ा कारण है। न्यू संचार

क्रांति योजना के तहत जब से आदिवासी युवा स्मार्ट फोन का इस्तेमाल कर रहे हैं, तब से एक बड़ा बदलाव इनके जीवन में आया है। अब इन्हे पढ़ाई की चिंता ही नहीं बल्कि साथ ही ये अब अपनी सुरक्षा को लेकर निश्चिंत हैं, जो सोशल मीडिया से जुड़कर देश दुनिया की खबरों से रुबरु हो रहे हैं। छत्तीसगढ़ को डिजिटल बनाने के लिए प्रदेश भर में इस योजना को लागू किया गया है। कल तक जो महिला मोबाइल पर बात करने के लिए तरसती थीं वही महिला आज अपने करीबी रिश्तेदारों से आज स्मार्ट फोन पर विडियो का लिंग कर अपनों का हालचाल पूछ रही है”।

हक की आवाज : सीजीनेट स्वर :

‘सीजीनेट स्वर’ जिसका शब्दिक अर्थ है— सेंट्रल गोंडवाना की आवाज। ये वो प्लेटफॉर्म है जहां आदिवासियों की समस्याओं को रखा जाता, उनको सुना जाता है और समस्या का हल निकालने की कोशिश की जाती है, यहीं सब होता है एक मोबाइल फोन के जरिये। शुग्रांशु चौधरी का कहना है कि आज के दौर में मोबाइल हर किसी की जेब में रहता है, इसलिए गोंडवाना इलाके में रहने वाला कोई भी आदिवासी ८०५००६८००० पर सम्पर्क कर अपनी बात रिकॉर्ड कर सकता है। जिसके बाद ‘सीजी नेट स्वर’ की वेबसाइट पर ऑडियो को अपलोड कर दिया जाता है। ताकि दूसरे लोग भी उस समस्या को सुन सकें। खास बात ये है कि जिस व्यक्ति को कोई समस्या होती है, उसके लिए उसे बताना होता है कि उस समस्या को दूर करने के लिए क्या कोशिश की गई, किन अफसरों से वो मिला और कौन लोग उसकी समस्या को दूर कर सकते हैं। इसके लिए उसे उन लोगों का फोन

नंबर भी रिकॉर्ड कराना होता है। साथ ही संदेश देने वाला लोगों से निवेदन करता है कि वो संबंधित अफसर को फोन कर उसकी समस्या को दूर करने को कहे। जिसके बाद कोई भी व्यक्ति संबंधित अफसर को फोन कर अपना काम करने को कह सकता है। इस तरह जहां प्रशासनिक अफसरों पर काम करने का दबाव पड़ता है, वहीं समस्या से अनजान अफसर भी काम करने को राजी हो जाते हैं।²

उदाहरण के तौर पर, 'अगर कोई सरकारी कर्मचारी गांव में समय पर ऑफिस नहीं आता है, तो उसकी शिकायत को 'सीजीनेट स्वर' पर कर सकते हैं। जिसके बाद से दूसरे लोग उसके मोबाइल नंबर पर कॉल करके ऊपर से दबाव बनाते हैं, ताकि समस्याओं को लोगों के सामने रख कर उसे सुलझाया सके। 'सीजी नेट स्वर' की टीम लोगों को इस बात की ट्रेनिंग जगह—जगह नुक़ड़, नाटक, कठपुतली नृत्य और वर्कशॉप के जरिए जाकर देती है, ताकि आदिवासी समाज तकनीकी के इस युग में अपने को ज्यादा मजबूत कर सके कि कैसे अपनी समस्याओं को सरकार के सामने रखना होता है? जिससे उसका समाधान सही समय पर हो सके। 'सीजीनेट स्वर' की बदौलत आज बहुत से हजारों आदिवासी युवा एक पत्रकार की भूमिका निभा रहे हैं। जिन्हें अपने हक की आवाज को उठाने का एक सबसे सशक्त माध्यम मिला है। 'सीजीनेट स्वर' ने मोबाइल और इन्टरनेट को एक साथ जोड़कर ऐसा प्लेटफार्म तैयार किया गया, जहां लोगों की समस्याओं को सुलझाने में मद्द मिलती हैं। गोंडी भाषा में बनाये प्लेटफार्म, जिसमें ज्यादातर आदिवासी युवा एक टीम के रूप में काम करते हैं, सीजी नेट स्वर' की टीम में लगभग 50 लोगों की एक टीम काम करती हैं। जिसका ऑफिस रायपुर (छत्तीसगढ़) में है।³

'सीजीनेट स्वर' मोबाइल स्टेशन छत्तीसगढ़ के आलावा देश के अन्य पांच राज्यों में अपने नेटवर्क को फैला चुका है। जिसमें मध्यप्रदेश, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, यूपी और उड़ीसा राज्य शामिल हैं। यही कारण है कि इस माध्यम के आने से आदिवासी और वंचित वर्ग अपने हकों के अधिकार के लिए इसका उपयोग बखूबी कर रहे हैं। 'सीजीनेट स्वर' पर हर रोज लगभग 150 से ज्यादा कॉल आती हैं। जिसमें लोगों की समस्याओं के साथ—साथ सरकारी व्यवस्था की पसंद और नापसंद जैसे संदेश उसमें शामिल होते हैं। जिसके माध्यम से गांव के लोग अपनी बात को साधारण फोन से अपनी भाषा में बात करते हैं, ताकि उनकी बात को रिकॉर्ड करके ग्राम पंचायत में भेज जा सके। इसके बाद गांव का एक व्यक्ति ग्राम पंचायत के दफ्तर में आकर अपने ब्लूटूथ वाले मोबाइल फोन में उस रेडियो कार्यक्रम को डाउनलोड कर लेता है और वापस अपने गांव आकर उसी कार्यक्रम को ब्लूटूथ की मदद से मोबाइल में बगैर किसी खर्च के साझा करता है। यह माध्यम मोबाइल, इन्टरनेट और ब्रॉडबैंड के जुड़ने से एक प्रमुख जरिया बनता जा रहा है। मोबाइल मीडिया की खपत से आज उपभोक्ताओं के लिए मोबाइल सिर्फ संचार का एक साधन ही नहीं बल्कि इन्टरनेट और उसके विभिन्न पहलुओं पर काम कर रहा है।⁴

बीबीसी की एक खबर के मुताबिक, 'छत्तीसगढ़' के कवर्धा जिले में एक वनरक्षक ने जब कुछ बैगा आदिवासियों से कथित तौर पर 99 हजार रुपए रिश्वत ली, तो रथानीय लोगों ने मोबाइल रेडियो स्टेशन सीजीनेट स्वर पर इसकी शिकायत कर दी। शिकायत का पता चलते ही वन अधिकारी को पैसे लौटाने पड़े और उन्होंने माफी भी मांगी। बाद में मामले की जांच हुई, जिसने रथानीय लोगों को अपनी आवाज सत्ता—प्रशासन में बैठे लोगों तक पहुँचा पाने का

एक विश्वास दिया है। 'सीजीनेट स्वर मध्य भारत के आदिवासी क्षेत्रों पर केंद्रित और मोबाइल पर आधारित एक रेडियो स्टेशन है। लोग अपना संदेश फोन के जरिए रिकॉर्ड करते हैं और यह संदेश प्रारंभिक जांच के बाद वेबसाइट पर प्रकाशित कर दिया जाता है साथ ही इन्हें मोबाइल पर भी सुना जा सकता है। मोबाइल पर सुनने के लिए श्रोताओं को बस एक नंबर पर कॉल करना होता है'।^६

बांग्ला अखबार एई समय में छपे एक साक्षात्कार के अनुसार 'अब मीडिया का जनविकल्प मोबाइल नेटवर्किंग, मोबाइल से ही जनता की आवाज सुनी जायेगी। छत्तीसगढ़ में यह प्रयोग कामयाबी से लगातार व्यापक होता जा रहा है। मोबाइल क्रांति ने बाजार को देहात के दूरदराज इलाके तक विस्तृत कर दिया है। मोबाइल धारकों के मार्फत अत्याधुनिक उपभोक्ता संस्कृति देश के चप्पे चप्पे में है और मुक्त बाजार के शिकंजे में हैं जंगल, पहाड़, मरुस्थल, रण और समुंदर। लेकिन अगर इसी मोबाइल क्रांति को मीडिया का जनविकल्प तैयार कर दिया जाये, तो हालात बदल भी सकते हैं। कम से कम छत्तीसगढ़ में गोंड भाषा में गोंडवाना के आदिवासियों की जनसुनवाई मोबाइल नेटवर्क के जरिये करके इसे संभव बनाया है जनपक्षधर लोगों ने। बीबीसी ने इस पर एक ओर एक विस्तृत रपट जारी की है, तो बांग्ला में एई समय ने एडवर्ड स्नोडेन की तरह यथास्थिति तोड़ने की मोबाइल पहल करने के सूत्रधार शुभ्रांशु चौधरी का इंटरव्यू संपादकीय पेज पर छापकर इस संभावना के द्वार खोल दिये हैं। शुभ्रांशु चौधरी गोंडवाना में पले बढ़े और वहां से ही पत्रकारिता की। उनका मानना है कि कथित मुख्यधारा की मीडिया में जनता के मुद्दों को आवाजन नहीं मिलती'।^७

दंडकारण्य और गोंडवाना में, 'नब्बे फीसदी आदिवासी माओवाद के समर्थक हैं सिर्फ इसलिए क्योंकि वे लोकतांत्रिक प्रक्रिया के किसी भी स्तर पर अपने दुःख दर्द की सुनवाई से वंचित हैं। मोबाइल नेटवर्क से उन्होंने इस जनसुनवाई को आदिवासियों की उनकी ही भाषा में अंजाम देने का बीड़ा उठाया ताकि कम से कम वैकल्पिक मीडिया के जरिये आदिवासियों के साथ एक संवाद सेतु तो तैयार किया जा सकें और संचार क्रांति के मार्फत ही उन्हें लोकतांत्रिक प्रक्रिया में शामिल किया जा सकें। वैकल्पिक मीडिया अब तक बुद्धिजीवी मध्यवर्गीय अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है। वंचित तबके के लिए वैकल्पिक मीडिया का दरवाजा खोलने के लिए यह एक चामत्कारिक पहल है और हमें इसको विस्तृत करने की कोशिश अवश्य करनी चाहिए। जाहिर है कि वेब का मामला बेहद खर्चीला है और नेट प्रयत्नों के नतीजे भी बेहद सीमाबद्ध हैं। हम लंबे समय तक माइक्रोसोफ्ट की दादागिरी के मध्य नेट पर मौजूद नहीं रह सकते और रहें तो भी सत्ता वर्ग को संबोधित करके कुछ हासिल नहीं कर सकते। दरअसल हम एकदम शुरुआती दौर से यानी जबसे इंटरनेट का प्रवलन हुआ तब से वे लगातार सोशल मीडिया पर लिख रहे हैं।'^८

मोबाइल बनाम अखबार, रेडियो और टीवी माध्यम :

"सीजीनेट स्वर मध्य भारत के आदिवासी क्षेत्रों पर केंद्रित और मोबाइल पर आधारित एक ऐसा रेडियो स्टेशन है। जहां लोग अपना संदेश फोन के जरिए रिकॉर्ड करते हैं और यह संदेश प्रारंभिक जांच के बाद वेबसाइट पर प्रकाशित कर दिया जाता है साथ ही इन्हें मोबाइल पर सुना जा सकता है। मोबाइल पर सुनने के लिए श्रोताओं को बस एक नंबर पर कॉल करना होता है। सीजीनेट पर सामाजिक मुद्दों से लेकर सांस्कृतिक विषयों से जुड़े कार्यक्रम तक प्रसारित

किए जाते हैं। इंटरनेट और मोबाइल ने कम्यूनिटी बिल्डिंग के तरीके को बदलकर इसे काफी सहज बनाया है। किसी जगह लोगों की वास्तविक मौजूदगी की जरूरत खत्म कर इंटरनेट और मोबाइल ने ज़्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचने का एक रास्ता दिया है। राजधानी दिल्ली से दूर देश के एक राज्य के अंदरूनी इलाकों में, जहां सरकारी नीतियां और सहूलियतें तक नहीं पहुंच पातीं, वहां सीजीनेट स्वर जैसी पहल को लोग अपना हथियार मान रहे हैं। सीजीनेट स्वर पर ऑडियो प्रकाशित किए जाने से पहले उसे सुना और संपादित किया जाता है। इसे शुरू करने वाले शुप्रांशु चौधरी कहते हैं, रेडियो, मोबाइल और इंटरनेट—इन तीनों को जोड़कर क्या एक ऐसा मीडिया प्लेटफॉर्म बनाया जा सकता है जो लोकतांत्रिक हो, जहां हर किसी को पूरी हिस्सेदारी मिले। हम लोग एक ऐसा ही मीडिया बनाने की कोशिश कर रहे हैं। सिर्फ सीजीनेट स्वर ही नहीं, कुछ और भी संगठन हैं, जो लोगों को अपनी बात रखने का मंच दे रहे हैं।⁸

ग्रामवाणी :

'ग्रामवाणी' मतलब जन—जन की आवाज का एक ऐसा माध्यम, जिसके जरिए ग्राम संबंधित खबरें, कहानियां और किस्से सुनने के लिए मध्यप्रदेश के लोगों को मोबाइल वाणी के जरिए अपनी बात रखने के एक ऐसा मंच देता है, जहां आम जनता की जरूरी बातें सुनी जाती हैं। फोन नंबर 08800438555 पर मिस्ड कॉल करके क्षेत्र के इलाकों की खबरें, लोगों की समस्याएं, उनकी राय और साक्षत्कार को रिकॉर्ड करके उसका समाधान निकलने की कोशिश की जाती है। ग्रामवाणी का मुख्य उद्देश्य दूर—दराज के क्षेत्रों में रहने वाले वंचित वर्गों के लिए, जो हमेशा से हाशिए पर रहे हैं, उनके अधिकारों को दिलाने के लिए मोबाइल संचार के माध्यम से

काम किया जा रहा है। ग्रामवाणी के जरिए ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में सामाजिक संरक्षण, ग्राम—पंचायतों व स्कूलों—कॉलेजों के माध्यम से विकास संबंधित मुद्दों पर बात की जाती है, ताकि समाज को प्रेरित करके उनमें बदलाव लाने की पहल की जा सके, यानी ग्रामवाणी एक ऐसा माध्यम है, जिसके जरिए श्रोता अपने संदेश सामुदायिक रेडियो स्टेशनों तक पहुंचाते हैं। श्रोताओं को दिए गए नंबर पर सिर्फ एक कॉल करके उनके संदेश को स्वचालित तरीके से रिकॉर्ड किया जाता है। उसी रिकॉर्डिंग सामुदायिक रेडियो स्टेशन के संचालक अपने कार्यक्रमों में सुनाते हैं। सरल तकनीक से बने एक आसान सूचना मॉडल के जरिए ग्रामवाणी 15 भारतीय राज्यों समेत अफगानिस्तान, पाकिस्तान, नामीबिया और दक्षिण अफ्रीका में करीब 20 लाख लोगों तक पहुंचने का दावा करता है। ग्रामवाणी से संबंधित 30 ग्रामीण रेडियो स्टेशन इंटरनेट और मोबाइल फोन के जरिए खबरें और लोगों की शिकायतें को जुटाते हैं।⁹

भाषा और मोबाइल :

'न्यू संचार क्रांति योजना ईकाई' के तहत छत्तीसगढ़ में 50 लाख स्मार्ट फोन मुफ्त बांटने का काम किया। बस्तर के जिन इलाकों में गोंडी बोली जाती है, वे घोर नक्सल प्रभावित हैं। सरकार की मंशा है कि आदिवासियों से उनकी बोली—भाषा में संपर्क किया जाए और सरकारी योजनाओं की उन्हें जानकारी दी जाए। आदिवासी समाज मोबाइल फोन के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, बैंकिंग जैसी सेवाओं का लाभ उठा सकें। इसके लिए विशेष ऐप तैयार किया गया। आदिवासी इलाकों में लगभग हर व्यक्ति के पास ये फोन हैं। जिसके माध्यम से सरकार हर घर तक पहुंच सकेगी। माना जा रहा है कि गोंडी बोली के प्रयोग से यह फोन नक्सल समस्या के

समाधान में भी उपयोगी साबित होगा। जिन आदिवासियों ने सरकार के खिलाफ हथियार उठा रखा है वे गोंडी ही बोलते हैं। संवाद के अभाव में ही वे मुख्यधारा से कटे हुए हैं।¹⁰

'गोंडी' भाषा का शब्दकोश बनाने वाली संस्था 'सीजीनेट स्वर' के संचालक शुभ्रांशु चौधरी का कहना है माओवादी आंदोलन से जुड़े 99 फीसदी लोग गोंडी ही बोलते और समझते हैं। जिन लोगों ने माओवादियों का साथ दिया है उनमें से अधिकांश स्कूलों से छाप आउट हैं। दरअसल गोंडी बोलने वाले बच्चों को स्कूली शिक्षा हिंदी में दी जाती है। जबकि माओवादी अपने विचारों को उन्हीं की भाषा में उनके सामने रखते हैं अब पहली बार गोंडी का मानक शब्दकोश बना है। हालांकि अभी यह प्रारंभिक स्तर पर ही है लेकिन सरकार अगर इसे आगे बढ़ाए तो गोंडी आदिवासियों से संपर्क का बेहतर माध्यम बन सकती है। मानक शब्दकोश में तीन हजार शब्द हैं। ये सभी शब्द मोबाइल में होंगे। हिंदी में टाइप करते ही गोंडी में अनुवाद हो जाएगा। आंध्रप्रदेश, ओडिशा, मध्यप्रदेश, तेलंगाना, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र और झारखण्ड के जंगलों में गोंडी बोली जाती है। देश में आदिवासी जनसंख्या का बड़ा हिस्सा गोंड आदिवासियों का है। एक करोड़ 20 लाख गोंड जनसंख्या में से 27 लाख गोंडी बोलते हैं। जिन राज्यों में यह भाषा चलन में है वे सभी नक्सल प्रभावित हैं। नक्सली गोंडी भाषी हैं।

मोबाइल वाणी :

ग्रामवाणी द्वारा सबसे पहले मोबाइल वाणी की शुरुआत झारखण्ड राज्य से हुई, कार्यक्रम को मिली अपार सफलता के बाद बिहार में यह कार्यक्रम शुरू किया गया। बिहार के लोगों का योगदान इतना मिला कि आज खुद लोगों ने इस प्लेटफार्म को सामुदायिक विकास के लिए अपना लिया है। मोबाइल वाणी अब मध्यप्रदेश में

भी अपनी शुरुआत कर चुकी है, जहां रोजाना 200 से ज्यादा श्रोता नियमित रूप से कॉल करके अपनी समस्यायें रखते हैं और प्रतिदिन 30 से 35 खबरें मोबाइल वाणी पर प्रसारित की जाती हैं। मोबाइल वाणी पर प्रसारित सभी खबरें जनसरोकारों से जुड़े मुद्दे जैसे विद्यालय की पढाई, गाँव की सफाई, अस्पताल की दवाई, सरकारी योजनाओं की हकीकत, राशन और केरेसिन, बुजुर्गों, महिलाओं, बच्चों के स्वास्थ और स्वच्छता, खेती, नौजवानों की शिक्षा, रोजगार और कला कौशल इत्यादि होते हैं।

मोबाइल वाणी के जरिए जो लोग इस प्लेटफार्म से जुड़े हैं। वे सभी ऐसे लोग हैं, जो 60–70 साल से एक ही गांव में रह रहे हैं। अब उन्हें ये एहसास हो रहा है कि उनका समुदाय अब गांव की सीमा तक ही सीमित नहीं है बल्कि मोबाइल वाणी के जरिए बाहरी जनता से खुद को जुड़ा हुआ महसूस कर रहे हैं, जिससे उनके समुदाय का विस्तार हो रहा है। "मोबाइल वाणी एक ऐसी कम्युनिटी नेटवर्किंग सेवा है, जिसमें मोबाइल फोन के जरिए कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। लिहाजा इसके लिए न तो इंटरनेट और न रेडियो सेट की जरूरत पड़ती है।" ऐसी कम्युनिटीज जो बिल्कुल दूर—दराज के इलाकों में रहती हैं, जिनके पास ऐसा कोई जरिया नहीं ताकि वो अपने आपको देश से जोड़ सके और देश में जो हो रहा है, उस पर अपनी बात रख सकें। लोगों को मोबाइल वाणी ने एक ऐसा जरिया दिया है, जहां एक दूसरे के अनुभवों से बाकी लोगों को सुनने और सीखने का मौका मिलता हो।

निष्कर्ष :

आदिवासी समाज के इलाकों में लगभग आज हर व्यक्ति के पास ये फोन है। इनके माध्यम से सरकार हर घर तक अपनी पहुंच बनाना चाहती है। माना जा रहा है कि गोंडी

भाषा बोली के प्रयोग से यह फोन नक्सल समस्या के समाधान में बहुत उपयोगी साबित होगा। जिन आदिवासियों ने सरकार के खिलाफ हथियार उठा रखा है, वे ज्यादातर गोंडी बोलते हैं। संवाद के अभाव में वे मुख्यधारा से कटे हुए हैं। आंध्र प्रदेश, ओडिशा, मध्यप्रदेश, तेलंगाना, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र और झारखण्ड के जंगलों में गोंडी बोली जाती है। देश में आदिवासी जनसंख्या का बड़ा हिस्सा गोंड आदिवासियों का है। एक करोड़ 20 लाख गोंड जनसंख्या में से 27 लाख गोंडी भाषा बोली जाती हैं।

माओवादी आंदोलन से जुड़े 99 फीसदी लोग गोंडी भाषा बोलते और समझते हैं। जिन लोगों ने माओवादियों का साथ दिया है उनमें से अधिकांश स्कूलों से छाप आउट हो रहा है। दरअसल गोंडी बोलने वाले बच्चों को स्कूली शिक्षा हिंदी में शिक्षा दी जाती, जबकि माओवादी अपने विचारों को उन्हीं की भाषा में उनके सामने रखते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए सरकार पहली बार गोंडी का मानक शब्दकोश तैयार करने में लगी है। हालांकि अभी यह प्रारंभिक स्तर पर ही है, लेकिन सरकार अगर इस पर अच्छी पहल करें, तो गोंडी आदिवासियों के संपर्क का बेहतर माध्यम बन सकती है। मानक शब्दकोश में तीन हजार शब्द हैं। ये सभी शब्द अब मोबाइल में होंगे।

गरीब आदिवासी बैगा समुदाय युवाओं के हाथों में स्मार्ट फोन और कुशलता से स्मार्ट फोन को इस्तेमाल करते देखना किसी चमत्कार से कम नहीं। एक वक्त था जब इन बैगा आदिवासियों की पहचान पारंपरिक दवाई बनाने के रूप में की जाती थी, लेकिन आदिवासी समाज का युवा तबका इस मिथक को तोड़ रहा है। साथ ही बैगा समाज की महिलाएं समाजिक रुढ़िवादिता को तोड़कर अपनी नई पहचान को स्मार्ट बनाने की ओर अग्रसर हैं। उससे छत्तीसगढ़

राज्य ही नहीं बल्कि देशभर का आदिवासी समुदाय जल्द ही अपनी बीमारू और नक्सलवाद ग्रस्त राज्य की छवि को तोड़कर एक विकसित राज्य का दर्जा पा लेगा।

संदर्भ सूची :

1. संचार क्रांति—पारंपरिक छवि को साथ लेकर स्मार्ट बन रहे बैगा आदिवासी https://dailyhunt.in/news/nepal/hindi/lallu+ram-paper_lalram_sandar+kanti+paramparik+chavi+koi+sath+klar+smart+ban+rabe+baiga+adivasi-newsid-96544026
2. प्रेरणा : एक शख्य वे आदिवासियों के लिये छोटी बड़ी नौकरी, मोबाइल से आज कर रहा उनकी समस्याओं का समाधान [https://Bisht Harish \(2016\), \(Accessed 2nd Feb 2016\), yourstory.com/hindi/02e5357674-a-man-left-a-big-job-for-the-tribals-mobile-is-the-solution-to-their-utmost_pageloadtypescroll](https://Bisht Harish (2016), (Accessed 2nd Feb 2016), yourstory.com/hindi/02e5357674-a-man-left-a-big-job-for-the-tribals-mobile-is-the-solution-to-their-utmost_pageloadtypescroll),
3. वही
4. वही
5. विश्व पलाश (2014), अब मीडिया का जन विकल्प मोबाइल नेटवर्किंग : मोबाइल से ही जनता की आवाज सुनी जायेगी (Accessed June 13, 2014), <http://eisamay.indiatimes.com/editorial/post-editorial/Subhrangshu-Choudhury-tells-about-his-new-mobile-networking-media/articleshow/36485149.cms>
6. वही
7. वही
8. बनर्जी तुशार (2013), डिजिटल इंडियंस : जहां अखबार, रेडियो, टीवी नहीं, वहां मोबाइल मीडिया Accessed सितम्बर 2013 https://dianholocaustmyfatherslifeandtime.blogspotdm/2014/06/blog-post_13.html
9. <https://gramvaani.org/p3528>
10. मिश्र अनिल (2018), छत्तीसगढ़, सरकार के मोबाइल में हिन्दी के साथ आदिवासियों की बोली भाषा <https://www.naidunia.com/chhattisgarh-raipur-the-language-of-tribal-people-with-hindi-in-chhattisgarh-government-mobile-1730649>

• • • • •

मुक्तिपर्व में अभिव्यक्त दलित समाज की संघर्ष गाथा का आलोचनात्मक मूल्यांकन

21वीं सदी के भारतीय दैनिक अखबारों के हवाले से सीवर में उत्तरकर सफाई करने के दौरान कई मजदूरों की मौत, चोटी कटवा अफवाह के आधार पर 70 वर्षीय दलित महिला की पीट-पीट कर हत्या, दो महिलाओं को डायन मानकर भीड़ द्वारा पत्थर से कूचकर नृशंस हत्या, बीफ खाने के शक में दलित युवक की हत्या, गौ वंश ले जाने के शक में दलित युवकों की पिटाई, घोड़ी पर बैठने के कारण दलित युवक की पीट-पीटकर हत्या, दलित रसोइए द्वारा बनाए गए मिड डे मील को स्कूल प्रशासन द्वारा छात्रों को परोसने से इंकार, दलित युवक से प्रेम पर प्रेमी जोड़े की हत्या, सीनियर महिला डाक्टरों द्वारा प्रताड़ित किए जाने पर दलित महिला डॉक्टर ने की आत्महत्या—आशर्य है कि आजादी के 72 वर्षों बाद भी ऐसी ही अनगिनत खबरें रोज छपती हैं, जो वर्तमान भारतीय समावेशी समाज का आईना है। उपरोक्त इन घटनाओं से पता चलता है कि भारतीय समाज अभी भी प्रत्येक व्यक्ति व समुदाय के लिए व्यावहारिक रूप से समाज नहीं बन पाया है।

निःसंन्देह ऐसे समाज को समावेशी कहा भी नहीं जा सकता है क्योंकि जहाँ अभी भी एक खास वर्ग के लोगों का शोषण जारी है। उनके मानवीय अस्मिता मूल्यों को दबाया जा रहा हो। इसी शोषण से मुक्ति और अपने समाज के इतिहास, संस्कृति और पहचान को बचाए रखने के लिए साहित्य में दलित विमर्श का उदय हुआ है। “दलित साहित्य वर्ण व्यवस्था, जातिवाद, अवतारवाद, भेदभाव, छूआछूत, लिंग भेद, कर्मकाण्ड, पाखण्ड, अंधविश्वास, भाग्य और ईश्वर तथा अवैज्ञानिकता और अतार्किकता के विरुद्ध एक वर्गहीन और जातिविहीन समाज की स्थापना

पूर्विका अत्री (शोधार्थी)
दिल्ली विश्वविद्यालय

हेतु प्रत्येक व्यक्ति में वैज्ञानिक एवं तार्किक सोच पैदा कर प्रत्येक व्यक्ति के विकास के लिए ज्ञान का विस्तार करता है। दलित साहित्य का सरोकार समाज के प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता और समानता से है।¹

इसी कड़ी में यहाँ प्रसिद्ध दलित लेखक मोहनदास नैमिशराय के प्रथम उपन्यास ‘मुक्तिपर्व’ पर चर्चा की जाएगी, क्योंकि यह उपन्यास आज भी उसी प्रश्न के साथ खड़ा नजर आता है कि दलित समाज अपनी ‘मुक्ति का पर्व’ कब मनाएगा? वस्तुतः यहाँ मुक्ति से अभिप्राय है, शोषण से मुक्ति। उस सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक दमन से मुक्ति।

भले ही यह उपन्यास 2002 में लिखा गया परन्तु यह अपनी कथावस्तु में दलित समाज के लम्बे सामाजिक संघर्ष को पिरोए हुए है। देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति को लेखक ने देश की गुलामी का मुक्ति पर्व कहने के साथ इसे दलितों का मुक्तिपर्व भी बताया है। देश को आजादी मिलने के साथ दलित वर्ग में यह विश्वास जागता है कि वे अब विश्वमतावादी सामाजिक और आर्थिक शोषण से मुक्त हो जाएंगे। कोई उनसे बेकार नहीं कराएगा, कोई उन्हें बन्धुआ मजदूर बना कर नहीं रख सकेगा, कोई उन का दलन—अत्याचार नहीं करेगा। लेकिन क्या दलितों का यह सपना पूरा हो सका? वस्तुतः देश की आजादी अंग्रेजों के शासन से मुक्ति थी, दलित वर्ग की मुक्ति नहीं। देश की आजादी के बाद भी वे तथाकथित सवर्णों की सत्ता के अधीन रहकर अभावग्रस्त, शोषित, पीड़ित जीवन जीने के लिए

मजबूर हैं। लेखक ने उपन्यास की भूमिका में सवाल उठाया है— “मुक्तिपर्व किसे कहें? जब देश आजाद हुआ उसे या जब किसी जाति या कुछ जातियों को आजादी मिली उसे।”²

यह उपन्यास दो भागों में दिखायी देता है। पहला भाग आजादी के पूर्व समाज में दलितों की स्थिति को दिखाता है। तो दूसरा भाग आजादी के बाद की दलित चेतना के विकास को। उपन्यास के प्रारंभ में मोहनदास नैमिशराय दलित बस्ती का विवरण देते हुए कहते हैं— “बस्ती के अधिकांश घरों में जूते चप्पलों का व्यवसाय होता था। शेष मजदूरी करते थे, नवाबों की हवेलियों या जर्मींदारों के खेतों में।”³ साथ ही लेखक शहर की ओर भी इशारा करते हैं कि शहर में हिन्दू-मुस्लिम धर्म अपनी-अपनी संस्कृति को लेकर जीता था। “शहर में मन्दिरों की भीड़ थी। गिनने लगो तो गिनती करना मुश्किल हो जाए। मस्जिदें भी कम नहीं थी।”⁴ इस विवरण से पता चलता है कि दलित लोग निम्न आमदनी के कार्यों से जुड़े थे, वहीं आजादी के बाद भी हिन्दू-मुस्लिम धर्म के नाम पर कहीं न कहीं आपसी दूरियाँ विद्यमान थी।

उपन्यास में आजादी की लड़ाई का अन्तिम चरण है, जिसमें जर्मींदारों-नवाबों में एक प्रकार का भय और क्रोध है कि सभी लोगों के आजाद हो जाने के बाद उनके घरों में काम कौन करेगा, इसलिए नवाब अलीवर्दी खाँ गुरसे में कहते हैं “अभी तो आजादी भी नहीं आई है। आजादी आने पर ये स्साले क्या करेंगे।”⁵ इसी क्रम में लेखक ने नवाबी व्यवस्था के भीतर दलितों पर हो रहे तरह-तरह के जुल्म एवं अमानवीय व्यवहार को दिखाया है। काम पर देर से आने पर नवाब बंशी पर चिलम फेंक देते हैं, जिससे उसका सिर फूट जाता है, वहीं जुल्म की हद तब होती है, जब थूकदान ना मिलने

पर नवाब बंशी पर गरजते हुए कहते हैं— “ला, हथेली कर इधर”⁶ और नवाब बंशी की हथेली पर ढेर सारी बलगम खखार कर थूक देते हैं।

उपन्यास में आजादी के दिन बंशी का पुत्र जन्म लेता है। लेखक ने बंशी के पुत्र के तौर पर एक दलित युवक का आजाद भारत में समस्त विषमताओं एवं परिस्थितियों में संघर्ष दिखाया है। सुनीत इस उपन्यास का नायक है और एक पिता के तौर पर बंशी दलित चेतना से युक्त है, जो आजादी के पहले दिन से ही एक जागरूक व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं। इसी चेतना के कारण ही बंशी सर्वप्रथम नवाब के यहाँ गुलामी की नौकरी छोड़ता है और सदियों से चली आ रही अंधविश्वासी और रुढ़िवादी परंपरा “ब्राह्मणों द्वारा नामकरण” को त्याग कर अपने पुत्र का नाम सुनीत रखता है। यहाँ पर दलितों में आजादी के बाद आए मानसिक परिवर्तन को साफ तौर पर देखा जा सकता है। दलित साहित्य का वैचारिक आधार है— डॉ. अंबेडकर का जीवन संघर्ष। बाबा साहेब ने कहा है कि— “शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो।” बाबा साहेब का मानना था कि दलितों के शोषण का सबसे बड़ा कारण अशिक्षा है। शिक्षा के माध्यम से ही उनकी मुक्ति संभव है। इसी प्रकार उपन्यासकार ने भी शिक्षा के महत्व को दलितों के लिए परम आवश्यक बताया है। उपन्यास में दिखाया गया है कि दलितों के लिए बस्ती में विद्यालय नहीं है, सर्वांग बस्ती के विद्यालय में दलितों का प्रवेश नहीं है। ऐसे में उपन्यासकार ने ‘रामलाल’ नाम के आर्य समाजी सर्वांग दलित समाज सुधारक का चित्रण किया है, जो दलितों के उद्धार के प्रति सजग है। वे ही बस्ती के लोगों को बताते हैं कि “आप लोगों का भी एक नेता है— डॉ. अंबेडकर।” रामलाल ही बस्ती में विद्यालय खुलवाते हैं और शिक्षकों की भी व्यवस्था करते हैं।

एक दलित व्यक्ति के लिए शिक्षा ग्रहण करना कितना कठिन है इसे उपन्यासकार ने बड़े ही यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया है। विद्यालय में जाति-पांति, ऊँच-नीच, गरीबी, असमानता, अस्पृश्यता आदि का सामना करना पड़ता है। जिससे अनेक दलित बच्चे अपनी पढ़ाई छोड़ देते हैं, लेकिन सुनीत एक ऐसा बच्चा है जो बचपन से ही बहुत होनहार और अपने अधिकारों के प्रति सजग है। वह प्रारंभ से ही समाज के यथार्थ और किताबों के पन्नों पर छपे चित्रों में विरोधाभास को पहचान लेता है। पानी पिलाने को लेकर भेदभाव के प्रति सुनीत क्रोधित हो उठता है और मास्टर जी के साथ मिलकर सबको एक ही बर्तन के साथ पानी पीने का विश्वास दिलाता है। डॉ. अंबेडकर ने भी दलितों के लिए पानी को लेकर संघर्ष किया था। उसकी ही झलक उपन्यासकार ने सुनीत के माध्यम से इस प्रसंग में दिखायी है।

रामलाल के माध्यम से उपन्यासकार ने बताना चाहा है कि सभी सर्वण एक जैसे ब्राह्मणवादी मानसिकता के नहीं होते, समस्या किसी ब्राह्मण से नहीं, बल्कि उसकी ब्राह्मणवादी मानसिकता से है। रामलाल के माध्यम से उपन्यासकार ने कहलवाया है कि ‘‘सर्वण समाज का कितना भी बड़ा समाज सुधारक क्या दलितों का बनकर रह सकता है?’’ इसलिए आगे चल कर रामलाल बंसी से अपनी लड़ाई खुद लड़ने के लिए कहता है— “बंशी भइया, आजादी का सूरज उग चुका है। अब अधिक दिनों तक नहीं चलेगा यह सब। मैं तो कहता हूँ। अब तुम्हें ही खुद आगे आना होगा और अपनी बात स्वयं अपने मुँह से कहनी होगी। आखिर भला कब तक हम कहते रहेंगे और तुम लोग सुनते रहोगे?’’⁸ यहाँ उपन्यासकार कहना चाहते हैं कि दलितों को स्वयं अपने प्रति हो रहे अन्याय के लिए संघर्ष करना होगा क्योंकि जिसने भोगा है, वही बेहतर लड़ सकता है।

उपन्यासकार ने उपन्यास में ऐसी महिला पात्रों का भी सृजन किया है जो अपने समाज की आवाज बनकर सामने आती हैं चाहे वह आर्य समाजी विचारों वाली सुमित्रा हो या सुमरती हो। सुमरती कहती है— “रास्ते का पत्थर नई है हम जिसे जब चाहे मरदों ने ठेल दिया। तुम्हारा भी उतना ही वजूद है, जितना मरदों का”।

विद्यालयों एवं नौकरियों में दलितों के प्रवेष पर उन की योग्यता पर प्रायः तथाकथित सर्वण समाज द्वारा प्रश्न उठाया जाता है। इसे इस प्रसंग के माध्यम से समझा जा सकता है— सुनीत प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता है और उसे मेरिट के आधार पर स्कॉलरशिप का फार्म भरना था। इस पर अध्यापक पाण्डे उसे फॉर्म नहीं भरने देते और कहते हैं कि ‘‘मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि जब सरकार ने तुम लोगों के लिए अलग से स्कॉलरशिप देने की योजना बनाई है तो तुम वही फार्म क्यों नहीं भर रहे हो?’’¹⁰ वे उसकी योग्यता जाति के आधार पर देखने लगते हैं, परन्तु हमेशा से यह सवाल रहा है कि यदि आर्थिक एवं सामाजिक रूप से समान अवसर प्राप्त हो तो किसी की योग्यता उसकी जाति निर्धारित नहीं कर सकती। सवाल बराबरी और समान अवसर का है।

सुनीत अपने जीवन में निरन्तर संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता है। वह आगे चलकर शिक्षक बनता है तथा अपने परिवार के वर्षों से चली आ रही रोजगार की परिपंक्ति को तोड़ता है। वहाँ दूसरी ओर सुमित्रा से अन्तर्जातीय विवाह कर एक नई मिसाल कायम करता है। इस प्रसंग पर कुछ दलित आलोचकों का मानना है यदि सुनीत व भूरी का विवाह होता तो, शायद लेखक की ज्यादा क्रान्तिकारी योजना होती, क्योंकि दलित समाज की अलग-अलग जातियाँ भी आपस में विवाह नहीं करती। इसी प्रकार मोहनदास नैमिशराय ने इस उपन्यास में अन्य

कई महत्वपूर्ण मुद्दे भी उठाए हैं। जैसे— संविधान की रक्षा व सम्मान, हिन्दू—मुस्लिम एकता, दलितों का मन्दिर में प्रवेश, दलित समाज में पुनर्विवाह आदि। ये सभी मुद्दे दलितों के संघर्ष का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिनके बल पर वे समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं।

दूसरी तरफ शिल्प के स्तर पर भी उपन्यास सफल हुआ है। वर्णनात्मक शैली में लेखक ने अपनी यथार्थ अभिव्यक्ति दी है। सहज एवं सरल भाषा के माध्यम से दलित समाज का संघर्ष करीब से अभिव्यक्त हुआ है। वहीं उपन्यास के कुछ प्रसंग अप्रासंगिक भी प्रतीत होते हैं। जैसे— हगनहट का विवरण, नूरा—नूरी मुर्ग का विवरण, काली आँधी की जानकारी या अति छोटी उम्र में सुनीत में प्रौढ़ परिपक्व नायक के गुण दिखाना अविश्वसनीय और अतिश्योक्तिपूर्ण लगता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि दलित मुक्ति ही उपन्यास का उद्देश्य है। मुक्तिपर्व दलित समाज की संघर्ष गाथा है, साथ ही उपन्यासकार ने उपन्यास के माध्यम से दलित वर्ग की आशा—आकांक्षाओं को मूर्त रूप दिया है। दलित समाज को अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए एवं अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए शिक्षित होना, संगठित होना एवं निरन्तर संघर्ष की आवश्यकता है। चूंकि प्रारंभ में ही उल्लिखित वर्तमान घटनाओं के आधार पर देखा जा सकता है कि बदलते समय के साथ दलितों के प्रति शोषण एवं अत्याचार के हथियार बदले हैं, जिससे सामाजिक न्याय का प्रश्न फिर खड़ा होता है। ये संघर्ष अभी खत्म नहीं किया जा सकता क्योंकि दलितों को अधिकार भले ही कानून ने आजादी के समय ही प्रदान कर दिए हों परन्तु सामाजिक शोषकजनों की मानसिकता में पूर्ण बदलाव नहीं आया है। ऐसे में दलितों के वेतना वाहक बाबा साहेब अंबेडकर के ओजस्वी विचारों से प्रेरित

यह उपन्यास दलित समाज के संघर्ष को लिए खड़ा दिखेगा। अतः अन्त में, गुलामी की जंजीरे कटने के बाद भी सामान्य मनुष्य की पूर्ण आजादी के प्रश्न को लिए, गोपालदास सक्सेना 'नीरज' की ये पंक्तियाँ प्रासंगिक हैं— “व्यक्ति व्यक्ति के बीच खाइयाँ, लहू बिछा मैदानों में धूम रहा है युद्ध सङ्क पर, शांति छिपी शमशानों में। जंजीरे कट गई मगर, आजाद नहीं इंसान हुआ। दुनिया भर की खुशी कैद है, चाँदी जड़े मकानों में।”⁸

सन्दर्भ सूची:

1. मोहनदास नैमिशराय कृत मुक्तिपर्व एक अनुशीलन, बालिका कांबले, विनय प्रकाशन, 2018, कानपुर, पृष्ठ संख्या—15
2. मुक्तिपर्व, मोनदास नैमिशराय, अनुराग प्रकाशन 2013, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या — 5
3. वही, पृष्ठ संख्या— 8
4. वही, पृष्ठ संख्या— 7
5. वही, पृष्ठ संख्या— 22
6. वही, पृष्ठ संख्या— 24
7. वही, पृष्ठ संख्या— 68
8. वही, पृष्ठ संख्या 72



मुख्यधारा मीडिया और आदिवासी समाज

शोध सार :

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। अतः मीडिया का यह परम् कर्तव्य है कि वह जनता को निष्पक्ष होकर सही जानकारी प्रदान करें। मीडिया में अदिवासी समाज की स्थिति हमेशा से हाशिए पर रही है। आदिवासी समाज कभी मीडिया के केन्द्र में नहीं रहा है बल्कि हमेशा परिधि पर ही रहा। मीडिया की शक्ति हमेशा सत्तासीन एवं पूँजीपति वर्ग के हाथ में रही है, जिन्होंने यहाँ के मूलवासियों के नायकों के चरित्र को एक सुनियोजित तरीके से कलंकित किया है। इनकी कोशिश रही है कि आदिवासी युवक—युवतियों की भागीदारी मीडिया के क्षेत्र में न हो सके। अतः परिस्थिति चाहे कितनी ही विकट व्यापों न हो उस पर विजय हासिल किया जा सकता है—एक मजबूत विचार एवं दृढ़ निश्चय के साथ। इस दिशा में आदिवासी समाज के युवक—युवतियों को मीडिया के क्षेत्र में नए—स्वरूप की खोज करने की जरूरत होगी। इस मुख्यधारा की मीडिया के समानांतर एक नयी और दुरुस्त मीडिया की संरचना कायम करने की आवश्यकता है। मीडिया में आदिवासी समाज की युवक—युवतियों का स्थान, उनके प्रति किए गए सत्तासीन लिए गए पहल आदि को इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न विद्वानों द्वारा आदिवासी समाज की स्थिति को दर्शाया गया है।

प्रस्तावना :

बात करें मीडिया के क्षेत्र में आदिवासी समाज की स्थिति की तो आदिवासी समाज इसके केन्द्र में कभी रहा ही नहीं। हमेशा इसके परिधि में रहा है। यही कारण है कि हमारा इतिहास राजा—महाराजाओं का इतिहास है, उनके

रीना कुमारी

सहायक प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

साईनाथ विश्वविद्यालय रांची

जीवन की गतिविधियाँ हैं। धनार्थ, पूँजीपति एवं सत्तासीन वर्ग के हाथों में मीडिया की ताकत रही, उसने अपने और अपने वर्ग—चरित्र की कालिमा को मीडिया की ताकत से छुपाया और अपने विरोधियों की जायज मांगों को भी अनैतिक, अमर्यादित, अधार्मिक और असामाजिक करार दिया। चूंकि अब सामाजिक सत्तासीन के हाथों में मीडिया की ताकत रही है। इसलिए उसने हमेशा यहाँ के मूलवासियों के नायकों के चरित्र को एक सुनियोजित सुविचारित तरीके से कलंकित किया, चरित्र हनन की कोशिश की, उस पर प्रश्न उठाए। उनके उज्ज्वल चरित्र को भी संदेहास्पद एवं दागदार बनाया क्योंकि कल का इतिहास आज की मीडिया द्वारा ही लिखा जा रहा होता है, इसलिए कल की पीढ़ी आज की किसी घटना या व्यक्तित्व को किसी रूप में देखेगी वह आज की मीडिया की निरपेक्षता और वस्तुनिष्ठता पर निर्भर करता है पर जैसा कि स्पष्ट है मीडिया हमेशा सामाजिक पूँजीपतियों का एक हथियार रहा है। इसलिए इससे निरपेक्षता और वस्तुनिष्ठता की आशा करना बेर्झमानी है। यह हमेशा सामाजिक रूप से सशक्त समूह के साथ होता है। उसकी चाकरी करता है। उसके हितों व स्वार्थों की हिफाजत करता है। इसीलिए समाज के वंचित, शोषित, उत्पीड़ित समूह का नायक हमेशा खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

मीडिया और आदिवासी समाज :

आदिवासी भारत के मूलनिवासी हैं लेकिन भारतीय लोकतंत्र एवं भारतीय समाज में वे

हाशिए पर ही रहे। भारतीय समाज की मुख्यधारा के लोगों के लिए आदिवासी समाज एक अजूबे की तरह रहा। भारत की पौराणिक कथाओं एवं टी.वी. धारावाहिक एवं सिनेमा में अधिकांशतः उन्हें राक्षस के रूप में दिखाया जाता है। बिना आदिवासी समाज और संस्कृति को समझे लोग उन्हें जंगली, बनमानुश, राक्षस और ऐसी ही उपमाओं से उन्हें अपमानित करते रहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि आदिवासी कौन है? भारतीय समाज में वो कहाँ खड़े हैं? आदिवासी कौन है? इस संबंध में 'डॉ. अनुज लुगुन' की कविता 'आदिवासी' के माध्यम से समझा जा सकता है— वे जो सुविधाभोगी हैं/ या मौका परस्त है या जिन्हें आरक्षण चाहिए/ कहते हैं हम आदिवासी हैं/ वे जो वोट चाहते हैं/ कहते हैं तुम आदिवासी हो/ वे जो धर्म प्रचारक है/ कहते हैं/ तुम आदिवासी जंगली हो।/ वे जिनकी मानसिकता यह है/ कि हम ही आदि निवासी है/ कहते हैं तुम वनवासी हो,/ और वे जो नंगे पैर/ चुपचाप चले जाते हैं जंगली पगड़ंडियों में/ कभी नहीं कहते कि हम आदिवासी है/ वे जानते हैं जंगली जड़ी-बूटियों से/ मौसम का मिजाज समझना/ सारे पेड़—पौधे, पर्वत—पहाड़, नदी—झारने जानते हैं कि वे कौन हैं।¹

वरिष्ठ पत्रकार देवेन्द्र कुमार कहते हैं कि— “रामायण, महाभारत, गीता, उपनिषद् और अन्य सभी धर्मग्रंथ तात्कालिक समाज का मीडिया ही है और इनके लेखन पर सामाजिक अभिजनों की सोच हावी रही है। इनके उपदेशों से सामाजिक अभिजनों का हित, सोच और स्वार्थ मुखरित होता है।”²

इसलिए इन ग्रन्थों में चित्रित खलनायकों का वास्तविक चरित्र का अध्ययन करते समय यह बात हमेशा हमारे दिमाग में रहनी चाहिए कि मीडिया द्वारा इन कथित खलनायकों के संबंध

में सूचना दी जा रही है, वह एकहरी है, एक पक्षीय है अपने जल, जंगल, जमीन और जागीर की लड़ाई लड़ते नायकों को बहुत ही सुनियोजित तरीके से खलनायक की छवि प्रदान की गई है और यह काम आज भी जारी है। आज भी आदिवासी समूहों के नायकों की छवि दुष्प्रचारित की जा रही है, उन्हें खलनायक के बतौर प्रस्तुत किया जा रहा है। मीडिया की ताकत आज भी सामाजिक पूँजीपति लोगों के हाथ में है और इसी ताकत के कारण यह सुनियोजित-सुविचारित कोशिश रहती है कि दलित आदिवासी समूह के युवक—युवतियों की भागीदारी पत्रकारिता के क्षेत्र में नहीं हो सके, पत्रकारिता में उसके भागीदारी को हतोत्साहित किया जाए। पत्रकारिता की स्थिति यह है कि शायद ही किसी अखबार के कार्यालयों एवं दफतरों में किसी आदिवासी युवक—युवती को अपने यहाँ सहकर्मी के तौर पर रखा हो, जबकि उनकी रचनाएँ हर अखबार से प्रकाशित होती हैं। उसकी गुणवत्ता पर कोई उंगली नहीं उठा सकता, एक पत्रकार के लिए आवश्यक नैसर्गिक प्रतिभा की उनमें कोई कमी नहीं है। उद्यमशीलता एवं जोखिम लेने की प्रवृत्ति भी इनमें प्रचुरता में विद्यमान है, अगर मीडिया को एक मिशन माना जाए तब भी इसे एक मिशन के बतौर अपनाने वाले आदिवासी पत्रकारों की कमी नहीं है। योग्यता के किसी भी मापदंड के ख्याल से ये कमतर नहीं हैं। फिर भी इनकी उपेक्षा की जाती है और यह सिर्फ उपेक्षा का मामला नहीं है यह तो एक साजिश का परिणाम है।

पुनःवरिष्ठ पत्रकार देवेन्द्र कुमार कहते हैं कि— “आदिवासी पत्रकारों की अखबार के दफतरों से गैर मौजूदगी महज कोई इत्तेफाक नहीं है, एक दीर्घकालीन राजनीति व रणनीति का हिस्सा है। आदिवासी समुदाय को पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश कर कठोर अंकुश लगाना और

इसका एक तरीका है अखबारों से इन्हें दूर रखना।”³

आज हम देख सकते हैं कि— “आदिवासी युवक एवं युवतियों को बौद्धिक—आतंक कायम कर दबाने की कोशिश की जाती है। क्योंकि यदि उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ावा दिया गया तो वे अपने हक के लिए लड़ना प्रारंभ कर देंगे। इसी संदर्भ में देवेन्द्रनाथ कहते हैं कि द्रोणाचार्य के समय से चली आ रही आदिवासी छात्रों को अपंग बनाने की प्रथा आज भी जारी है।”⁴ पर हाँ आज तरीके बदले हैं, रणनीतियाँ बदली हैं पर आदिवासी छात्र-छात्राओं को नाकामयाब बनाने की कार्य योजना में विराम नहीं लगा है। कारण स्पष्ट है कि मीडिया भी इस समाज का एक हिस्सा है। समाज की जैसी संरचना होगी वैसी ही पत्रकारिता की संरचना होगी। चूंकि आज भी समाज में आदिवासी हाशिए पर है, तो मीडिया में इनका हाशिए पर होना अस्वाभाविक नहीं है। आदिवासी समुदाय में एक बड़ा हिस्सा आज पढ़ लिख रहा है। इसलिए आदिवासी समुदाय में अखबारों की बिक्री दिन पर दिन बढ़ती जा रही है और इसलिए आदिवासी के संबंध में कभी—कभार कुछ फीचर—आलेख व रिपोर्ट लिखवा कर बाजार की इस संभावना को टटोला जाता है पर इसके साथ ही आदिवासी समुदाय की वास्तविक समस्या सामने नहीं आ पाए इसकी रणनीतियाँ भी बनाई जाती हैं। यही कारण है कि आदिवासी समुदाय के जो युवक—युवतियाँ आज स्वतंत्र रूप से पत्रकारिता कर रहे हैं, जिनके रिपोर्ट—आलेख मुख्यधारा के पत्रों में छपते रहते हैं। वे अपने हक से संबंधित लेख लिख रहे हैं, परंतु उनसे आदिवासी समुदाय

से अलग विषयों पर लिखने की फरमाईस की जाती है। उसे राजनीतिक सामाजिक आलेखों के लेखन से हतोत्साहित किया जाता है। क्योंकि बढ़िया से बढ़िया मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी घटनाएँ व लेख भी शासकीय नीति पर बदलाव के लिए दबाव नहीं बना सकता।

इस प्रकार आदिवासी समुदाय के जो युवक—युवतियाँ स्वतंत्र रूप से पत्रकारिता कर रहे हैं। उनकी भी स्वतंत्रता सीमित है, वहाँ अपने बुनियादी समस्या को नहीं उठा सकता, क्योंकि वह जानता है वह प्रकाशित नहीं होगी, उसे वह लिखना है जो अखबार चाहता है। उस तरह की रिपोर्टिंग करनी है, जिस तरह की रिपोर्ट की जरूरत अखबार को

है, अखबार की जरूरत वैसी रिपोर्टिंग की है, जिससे सत्तावर्ग की असुरक्षा खत्म हो, उसकी किले बंदी मजबूत हो, अखबार को जरूरत उस तरह की रिपोर्ट की भी है। जिससे आदिवासी समूहों को वास्तविक समस्या से दूर कर दिया जा सके और यदि यही काम एक आदिवासी रिपोर्टर करें, तो इस रिपोर्ट की विश्वासनीयता ज्यादा बढ़ जाती है। परंतु यहाँ पूँजीपति एवं सत्ता सीन को इस बात का डर बना रहता है कि यदि आदिवासी पत्रकार या रिपोर्टर को यदि रिपोर्ट तैयार करने की पुरी आजादी दे दी जाए, तो वह विस्थापन को अवैध बताएगा। जल—जंगल—जमीन पर आदिवासी समाज की मालिकाना स्थिति को सामने लाने की कोशिश करेगा। जन हक स्थापित करने की दिशा में चल रहे, विभिन्न जनान्दोलनों को प्रमुख खबर बनाएगा। तब मीडिया भी उसके लिए प्रतिरोध

“आदिवासी युवक एवं युवतियों को बौद्धिक—आतंक कायम कर दबाने की कोशिश की जाती है। क्योंकि यदि उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ावा दिया गया तो वे अपने हक के लिए लड़ना प्रारंभ कर देंगे।

करने का एक कारगर हथियार बन जाएगा और यदि ऐसा हुआ तो सामाजिक पूँजीपति एवं सत्तासीन का जो अधिपत्य व आतंक है उसमें दरार पड़ना प्रारंभ हो जाएगा।

मीडिया के क्षेत्र में आदिवासी युवक—युवतियों की दुःखद स्थिति को उजागर करते हुए 'राकेश रेणु' जी कहते हैं कि— 'सन् 2000 में पश्चिमी दुनिया की नकल में जब भारतीय मीडिया नई सहस्राब्दि के आगन की खुशियाँ मना रहा था और इसके स्वागत के समूहगान गा रहा था, अफसोसजनक रूप से तब भी इस मीडिया समूह में एक भी आदिवासी चेहरा न था। देश की कुल आबादी को प्रायः एक तिहाई हिस्से का प्रतिनिधित्व वहाँ सर्वथा नदारद था। निजी क्षेत्र में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया—टेलीविजन और एफ.एम. रेडियो का तेजी से विस्तार हो रहा था, लेकिन वहाँ न केवल समाचारों, बल्कि मनोरंजन सहित किसी भी कार्यक्रम की एकरिंग करने वाला आदिवासी चेहरा न था। लगभग दस साल तक भारत के विभिन्न नगरों में स्थित समाचार पत्रों के समूहों के अध्ययन के बाद शिक्षाविद् रॉबिन जेफ्री की 'इंडियाज न्यूजपेपर रिपोल्यूशन' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस किताब में जेफ्री रेखांकित करते हैं कि विकास गाथाएं लिखने के बावजूद किसी भी समाचार पत्र समूह में उन्हें एक भी आदिवासी संपादक या मालिक की बात तो दूर है, पत्रकार तक नहीं मिला।'⁵

अतः हमें विचार करने की जरूरत है कि यह स्थिति जो आदिवासी समाज की मीडिया के क्षेत्र में है, इसमें सुधार कैसे किया जाए। इस संदर्भ में राकेश रेणु जी कहते हैं कि— 'इसकी शुरुआत भारतीय प्रेस परिषद् और दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (ट्राई) कर सकता है। इसमें पहल या कहें कि सफल प्रयास राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित

जनजाति आयोग और अल्पसंख्यक आयोग जैसे संगठन भी कर सकते हैं। एक जरूरी पहल पत्रकारिता का प्रशिक्षण देने वाले संस्थानों के स्तर पर अपेक्षित है। सरकार द्वारा चलाए जाने वाले संस्थानों में जहाँ नामांकन में आरक्षण व्यवस्था लागू है, इस पर निजी क्षेत्र के प्रशिक्षण केन्द्रों में अमल करने और उन्हें जरूरी छात्रवृत्तियाँ देने की जरूरत है। ताकि अधिकाधिक आदिवासी युवा पत्रकार प्रशिक्षित होकर निकलें और पत्रकारिता के अंदरुनी जनतंत्र को मजबूत करें।'⁶

आवश्यकता इन सभी प्रयासों पर एकसाथ अमल करने की है। तभी चौथे खम्भे की कालिमा साफ की जा सकती है। तभी समाज के एक बड़े हिस्से का असंतोश कम हो पाएगा और उनकी अनकहीं कहानियों को वाणी मिल पाएगी।

आदिवासियों से जुड़े ऐसे ही तमाम मुद्दों पर विकास संवाद ने हाल ही में 8वाँ राष्ट्रीय मीडिया संवाद आयोजित किया। मालवा की देहरी पर बसे ऐतिहासिक शहर चंदेरी में हुए इस तीन दिवसीय आयोजन का विषय 'आदिवासी और मीडिया' पर केन्द्रित था। इस आयोजन में कई विद्वानों ने आदिवासी समाज के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला। इस आयोजन में शामिल आदिवासी लोक कला अकादमी के सेवानिवृत्त निदेशक कपिल तिवारी ने कहा कि— "आदिवासियों के साथ काम करते हुए मेरी जिंदगी का सबसे अच्छा समय गुजरा है। विकास यकीन आवश्यक है, लेकिन विकास के एवज में यदि आपका मनुष्यत्व कम हो रहा हो, तो यह बहुत खतरनाक है। विकास की इसी अंधी दौड़ के चलते पिछले 50 वर्षों में भारत विचार शून्यता की ओर गया है। हमें उन आदिवासियों के बारे में विचार करना चाहिए, जिन्हें राजनेताओं और नौकरशाहों ने सिर्फ अपनी—अपनी गरज से इस्तेमाल किया है।"⁷

'तिवारी' जी ने यह भी कहा है कि "इन तथाकथित जिम्मेदारों ने आदिवासियों को इंसानों

की तरह देखने की दृष्टि ही खत्म कर दी है। इस वर्ग को प्रारंभ से ही पिछ़ा व दयनीय मान लिया गया। इनकी इतनी दया जरुर रही कि इन्होंने आदिवासियों को पशु न मानते हुए, पशुओं से थोड़ा ऊपर माना। दरअसल, देखा जाए तो आदिवासियों में अथाह रचनाशीलता है। मगर हमने रचना का सम्मान करना छोड़ दिया है और काल का गुणगान करने लग गए। हम निरंतर युद्धरत हैं, जबकि वे शांतिप्रिय और मर्यादाओं के बीच रहने वाले। हमने इस युद्ध में सारी मर्यादाएँ पद्दलित कर दी हैं। अतः निवेदन है कि 'हे योद्धाओं! जरा युद्ध विराम की घोषणा करो, इतना न जीतो'। आदिवासी धर्मों को नहीं जानते, लेकिन धार्मिकता से जीते हैं। लोक को ध्यान में रखकर देखने से भारत ज्यादा समझ में आता है। या तो इन्हें शास्त्र के रूप में जानें, या फिर लोक परंपरा के रूप में।’⁸

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिवासी समाज की स्थिति कितनी दयनीय होती जा रही है, जिसके पीछे का कारण सत्तासीन कितनी दयनीय होती जा रही है। जिसके पीछे का कारण सत्तासीन एवं धनाढ़य वर्ग की राजनीति

धनाढ़य एवं सत्तासीन हाथों की कठपुतली मीडिया बनी हुई है। उससे मीडिया को ऊपर उठना पड़ेगा। उन आदिवासी युवक—युवतियों की भागीदारी पत्रकारिता एवं मीडिया के क्षेत्र में करनी होगी।

है। कुछ मीडिया कर्मी इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि वह आदिवासी समाज की उन्नति के कार्य में पूरी ईमानदारी बरतें परंतु ऐसा करना उनके लिए कठिन हो जाता है क्योंकि

मीडिया कहीं न कहीं सत्तासीन एवं धनाढ़य वर्ग के हाथों की कठपुतली सी होती है। इस पक्ष को उजागर करते हुए 8वाँ राष्ट्रीय मीडिया संवाद के आयोजन में उपस्थित आउटलुक की एसोसिएट एडिटर, भाषा सिंह ने कहा कि— “आदिवासियों का बड़ा हिस्सा शहरों में मजदूरी कर रहा है। जिस तरह से मीडिया का बड़ा हिस्सा कॉर्पोरेट की गिरफ्त में है, हम आदिवासियों के पक्ष में उतनी ईमानदारी से नहीं लिख पाते। उनकी अस्मिता खतरे में है। आदिवासियों की परंपराओं का गुणगान तो हम करते हैं, लेकिन उन्हें बचाने के लिए हम अपनी आवाज बुलंद नहीं करते। इसी के चलते आज आदिवासी अस्मिता खतरे में है, और हमें आदिवासी अस्मिता व पहचान को बचाना होगा।”⁹

आवश्यकता इस बात की है कि चाहे परिस्थिति कितनी ही विकट क्यों न हो उस पर विजय हासिल किया जा सकता है, एक मजबूत विचार एवं दृढ़ निश्चय के साथ। अतः आदिवासी समाज के युवक—युवतियों को मीडिया के क्षेत्र में नए स्वरूप की खोज करनी पड़ेगी। इस मुख्यधारा की मीडिया के समानांतर एक नयी और दुरुस्त मीडिया की संरचना कायम करनी होगी।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जिन धनाढ़य एवं सत्तासीन हाथों की कठपुतली मीडिया बनी हुई है। उससे मीडिया को ऊपर उठना पड़ेगा। उन आदिवासी युवक—युवतियों की भागीदारी पत्रकारिता एवं मीडिया के क्षेत्र में करनी होगी। जिन्हें राजनेताओं और नौकरशाहों ने सिर्फ अपनी—अपनी गरज से इस्तेमाल किया है। जिन आदिवासियों को राक्षस दानव की संज्ञा दी गई है, उन्हें इंसानों की तरह देखना होगा। उन्हें मुख्यधारा से जोड़ना होगा, क्योंकि

जब तक मूलवासी ही शिक्षित नहीं होगी। विकास की बात भी करना निरर्थक—सा प्रतीत होगा। मीडिया को स्वतंत्र होकर इन आदिवासियों की स्थिति से समाज को अवगत कराना होगा। उन्हें आदिवासी समाज की उन्नति का कार्य पूरी ईमानदारी से करना होगा, आज आदिवासी समाज की अस्मिता खतरे में है। अतः मीडिया ही वह सशक्त माध्यम है, जो आदिवासी समाज की अस्मिता व पहचान को बचाए एवं बनाए रखने में पूरी तरह कारगर साबित हो सकता है।

.....

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. लुगुन अनुज, 'आदिवासी', पृष्ठ सं. 3
2. कुमार देवेन्द्र, दलित आदिवासी और मीडिया—पृष्ठ सं. 14
3. वही, पृष्ठ सं. 15
4. वही, पृष्ठ सं. 16
5. रेणु राकेश, मीडिया में दलित, वंचित और आदिवासी—पृष्ठ सं. 14
6. वही, पृष्ठ सं. 17
7. 8वाँ राष्ट्रीय मीडिया संवाद द्वारा आयोजित तीन दिवसीय आदिवासी और मीडिया पर आधारित व्याख्यान से उद्धृत।
8. वही
9. वही

कृपया आप से आग्रह है कि पैरोकार (त्रिमासिक) पत्रिका का सदस्यता लेकर हमारे रचनात्मक कार्यों में सहयोग करें।

लेखकों से अनुरोध किया जाता है कि पैरोकार के लिए जो भी रचनाएँ भेज वह यूनिकोड वर्ड (Unicode Word) या (Kurtidev010) Font में अवश्य होनी चाहिए।

E-mail ID : pairokarpublication@gmail.com

m9903849713@gmail.com

— प्रबंधक संपादक

स्वाधीन हिन्दी काव्य का विकास

मोहन कुमार (शेषार्थी)

हिंदी विभाग

काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी कविता चार दशक से ज्यादा समय का सफर पूरा कर चुकी थी। इस दौरान द्विवेदी युग के बाद स्वतंत्रता प्राप्ति तक आते—आते हिन्दी कविता में छायावाद और प्रगतिवाद जैसे दो महत्वपूर्ण काव्यान्दोलन हो चुके थे, जिन्होंने अपनी प्रवृत्तियों और विशेषताओं के अनुरूप हिन्दी कविता का स्वरूप निर्मित किया। परंतु आजादी के चार वर्ष पूर्व सन् 1943 ई. में तार सप्तक के प्रकाशन से हिन्दी कविता में एक नया मोड़ आया और छायावादी तथा प्रगतिवादी कविता से भिन्न किस्म की कविताओं का स्वरूप निर्मित हुआ, जिन्हें प्रयोगवादी कविता कहा गया। अपने पूर्ववर्ती कविता से प्रयोगवादी कविताओं में मुख्य अंतर या फर्क यह था की जहां छायावादी और प्रगतिवादी कविता में भावबोध पर जोर, सामाजिकता का आग्रह और संप्रेषण पर अधिक ध्यान दिया जाता था, वहीं तार सप्तक के साथ आई प्रयोगवादी कविताओं में बौद्धिकता की प्रधानता, वैयक्तिकता का आग्रह और कविता में रूप और शिल्प के स्तर पर नए प्रयोगों पर अधिक बल दिया गया। प्रयोगवादी काव्य आंदोलन का संयोजन और नेतृत्व का श्रेय कवि सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अङ्गेय जी को दिया जाता है। इसके अंतर्गत मुख्यतः तार सप्तक (1943ई.), दूसरा सप्तक (1951ई.) तथा तीसरा सप्तक (1950ई.) का प्रकाशन हुआ तथा काफी बाद में सन् 1979 ई. में चौथा सप्तक का प्रकाशन भी हुआ। इन सभी सप्तकों का संपादन कवि अङ्गेय ने ही किया। तार सप्तक के प्रकाशन के बाद ही

गहरी बौद्धिकता और प्रयोग पर जोर देने के कारण प्रयोगवादी कविताओं की दूरुहता प्रकट होने लगी और स्वाधीनता के बाद सन् 1951 ई. में दूसरा सप्तक के प्रकाशन के साथ ही नई कविता का आरंभ हो गया। '1947 ई. से लेकर 1951 ई. तक का काल देश की राजनीति और हिंदी साहित्य में भारी उथल पुथल और गहरे संघर्ष का काल है। राजनीति में आजादी के नाम पर सत्ता हस्तांतरण के बाद सामंती पूंजीवादी शोषण शासक वर्ग से किसानों मजदूरों का वर्ग संघर्ष तेज हुआ जिसकी अभिव्यक्ति तेलंगाना की कृषि क्रांति में हुई। हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद, यथार्थवाद और कलावाद के बीच का संघर्ष तेज हुआ जिसकी अंतिम परिणति प्रगतिशील आंदोलन के विघटन और व्यक्तिवादी कलावादी रचना दृष्टि के रूप में प्रयोगवाद और नई कविता की स्थापना में दिखाई देती है।¹

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता मुख्यतः दो रूपों में आगे बढ़ती है। पहली प्रयोगवादी या नयी कविता के रूप में तथा दूसरी स्वातंत्र्योत्तर प्रगतिशील काव्यधारा के रूप में। आगे चलकर सन् 60 के बाद समकालीन कविता के दौर में ये दोनों का काव्य रूप आपस में मिल जाते हैं। नयी कविता शब्द का प्रयोग एक काव्य आंदोलन के रूप में किया जाता है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम शमशेर बहादुर सिंह ने दूसरा सप्तक के अपने कवि वक्तव्य में किया। उन्होंने नई कविता की विशेषताओं को अङ्गेय और मुक्तिबोध से पहले

निराला की कविताओं में महसूस किया। 'अब्बल तो शायद यह निवेदन कर देना जरूरी या मुनासिब हो कि मेरी कविता खड़ी बोली हिंदी में कुछ हद तक नहीं हो सकती है। मगर मसलन अंग्रेजी में उसका नयापन, अगर बहुत पुराना नहीं, तो कुछ न कुछ पुराना, कम से कम खासी अच्छी तरह जाना पहचाना हुआ जरूर माना जाए गय और यह कि इस के बहुत से रंग रूप में निराला में भी शुरू से देखता हूँ। अजय को जिन्होंने ध्यान से पढ़ा होगा या गजानन
e& c k d k H osbl | scgq u p 16 ■ A²
बाद में अज्ञेय ने इसी पुस्तक की भूमिका तथा पटना आकाशवाणी से प्रसारित वार्ता में नई कविता की चर्चा और व्याख्या की। नयी कविता स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में आया पहला काव्यान्दोलन है। इसलिए जो सामाजिक तथा राजनीतिक संदर्भ और चिंता छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के पास था, वह नई कविता के पास नहीं था। नयी कविता में संघर्ष के मुद्दे एवं बिंदु एकदम भिन्न किस्म के हैं। सन् 1967 ई. के आसपास होने वाले नक्सलबाड़ी किसान आंदोलन ने स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की समकालीन काव्य धारा को व्यापक रूप से प्रभावित किया। धूमिल, आलोक धन्वा, कुमार विकल, चंद्रकांत देवताले, राजकमल चौधरी आदि इस आंदोलन से प्रभावित कवि हैं। इनकी कविताओं में उस पुराने व्यवस्था के प्रति गुस्सा और आक्रोश साफ झलकता है जिसे नये लोग आजादी के बाद चला रहे थे। नक्सलबाड़ी आंदोलन जैसी प्रक्रियाएं विकल्प हीनता के दौर में जनता और रचनाकारों के सामने अपनी सक्रियता और रचनात्मकता को बचाये और बनाये रखने के लिए एक विकल्प प्रस्तुत कर रही थी।

समकालीन हिंदी कविता सशक्त राजनीतिक चेतना की कविता है। इसमें नारेबाजी

नहीं है, वाग्मिता नहीं है। यहां कविता में सहज अभिव्यक्ति पर जोर दिया गया है। जन-पक्षधरता और जन-विश्वास की कविताएं लिखी गई। 25 जून 1975 को देश में आपातकाल लागू हुआ। इसके साथ ही भारतीय राजव्यवस्था में लोक पर तंत्र के हावी होने की प्रक्रिया का आरंभ हुआ। आपातकाल के आतंक, उसकी पीड़ा, क्रूरता, बर्बरता और उसकी असफलता ने समकालीन हिंदी कविता पर व्यापक प्रभाव डाला। रघुवीर सहाय, दुष्टंत कुमार, श्रीकांत वर्मा आदि की कविताओं में इसको सहज ही देखा जा सकता है।

आठवें और नौवें दशक में हिंदी कविता में अस्मितामूलक विमर्श का आरंभ हुआ। इसमें अन्य कविताओं के साथ-साथ स्त्री, दलित, आदिवासी आदि विषयों को आधार बनाकर कविताएं लिखी गई। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति, दलितों और आदिवासियों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों और परिस्थितियों का चित्रण कविता में होने लगा। सन् 1991 ई. में भारत में आर्थिक उदारीकरण को अपनाया गया। 1992 में मंडल कमीशन की सिफारिशें लागू की गई जिसका व्यापक विरोध किया गया। इसी वर्ष बाबरी मस्जिद का विध्वंस हुआ। बाजारवाद, मौकापरस्त राजनीति, हिंसा और सांप्रदायिकता का प्रसार हुआ जिसकी भयावहता 2002 के गुजरात दंगों में देखी गई। उदारीकरण के कारण मनुष्य के जीवन यापन का स्तर बदला। स्थिति बेहतर और बदतर दोनों हुई। गांव खाली होने लगे, शहरों में दैनिक मजदूरों की उपलब्धता बढ़ी, पलायनवाद, अत्यधिक जनसंख्या और प्रदूषण बड़ी समस्याएं बनकर उभरी। समकालीन कविता इन सभी स्तरों से गुजरते हुए और प्रभावित होते हुए अपना स्वरूप निर्मित करती है। भारत में विकास के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया और समाजवाद को अपना लक्ष्य

घोषित किया। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत ने निर्गुटता की नीति अपनाई। स्वाधीन भारत की मानसिकता के निर्माण में दो प्रक्रियाओं का सर्वाधिक महत्व है— एक, आम चुनावों और दूसरी, पंचवर्षीय योजनाओं का। इन्होंने ही इन स्थितियों में परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ की और उन परिस्थितियों को प्रस्तुत किया, जिन पर स्वाधीनता के उपरांत का साहित्य जिसे स्वातंत्र्योत्तर साहित्य कहा जाता है, आश्रित है।³

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की विकास यात्रा एक लंबा सफर तय कर चुकी है। इस दौरान हिंदी कविता एक और जहां पुराने विषय, स्वर और स्वरूप से आगे बढ़ती है वहीं दूसरी और वह एक नया कलेवर भी प्राप्त करती है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता को प्रभावित करने वाला सबसे मुख्य और प्रधान कारण भारत आजादी, उसकी लोकतांत्रिक व्यवस्था और से उत्पन्न मोहभंग रहा है। स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही बहुत तरह के स्वप्न और संभावनाएं, उम्मीदें और आशाएं भारतीय जनमानस के भीतर पनपी। सबको भरोसा था कि स्वाधीनता के साथ ही भारत से सभी तरह की समस्याएं गायब हो जाएंगे और लोकतांत्रिक व्यवस्था में सबको एक बेहतर जीवन जीने को मिलेगा। 15 अगस्त 1947 को लिखी गई शमशेर बहादुर सिंह की कविता भारत की आरती में स्वाधीनता के साथ जुड़ी उम्मीदों और आकांक्षाओं का सहज अनुमान लगाया जा सकता है—

‘भारत की आरती
देश—देश की स्वतंत्रता देवी
आज अमित प्रेम से उतारती।
साम्राज्य पूंजी का क्षत होवे
ऊंच—नीच का विधान नत होवे
साधिकार जनता उन्नत होवे
जो समाजवाद जय पुकारती।’⁴

स्वाधीनता के साथ जो जन आकांक्षाएं जुड़ी थीं वे सब आजादी के एक दशक के भीतर ही टूटने लगी। लोकतांत्रिक व्यवस्था में जिस सामाजिक और आर्थिक विकास का सपना दिखाया गया था वह पूरा नहीं हुआ। साठ के दशक में भारत में युद्ध और अकाल का सामना भी भारतीय जनता को करना पड़ा। ऐसे में जनता का आजादी और लोकतांत्रिक व्यवस्था से तेजी से मोहभंग होने लगा। इन्हीं परिस्थितियों में विकसित होती है हिंदी की नई कविता में इस लोकतांत्रिक मोहभंग की अभिव्यक्ति हुई। हिंदी कवियों ने देश के सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया। जनता के दुख दर्द और दशा का सटीक वर्णन इन कविताओं में हुआ है। कवियों ने नये—नये ढंग से समय की सच्चाई को अपनी कविताओं के माध्यम से जनता के बीच प्रस्तुत किया। तीसरा सप्तक में शामिल शमशेर बहादुर सिंह की एक कविता का यह अंश दृष्टव्य है—

‘सत्य कहता हूं
चाहे मर्म झाकझोर उठे
आंखें छलछला आये।’⁵

सन् 60 के बाद स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता का स्वरूप और अधिक विकसित हुआ। इस दौरान हिंदी कविता के विषय क्षेत्र में और अधिक विस्तार और गहराई का समावेश हुआ। कविता के क्षेत्र में कई नाम और आंदोलन एक साथ चल पड़े। अकविता, अति कविता अस्वीकृत कविता विद्रोही पीढ़ी की कविता कबीर पीढ़ी भूखी पीढ़ी आदि नामों से काव्य आंदोलन चलाये गये। इन नामों से अलग हटकर विचार करने पर हम पाते हैं कि सन् 60 के आसपास हिंदी कविता अपने पूर्ववर्ती कविता की धारा से कुछ अलग होती हुई दिखाई पड़ती है। साठ के बाद की कविता में असंतोष, अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर बहुत साफ तौर पर उभरा है।

राजकमल चौधरी और धूमिल इस कविता आंदोलन के अग्रणी कवि हैं। अवस्था की विसंगतियों और आम आदमी की विवषता का यथार्थ वर्णन इन कवियों की कविताओं में हुआ है। सत्ता और व्यवस्था के शोषण से पीड़ित आम जनता जब हर प्रकार से लाचार और विवश होती है तो उसकी क्या दशा होती है, इस कटु यथार्थ का वर्णन राजकमल चौधरी और धूमिल जैसे कवियों ने अपनी कविताओं में किया है। वास्तव में स्वाधीनता के बाद पहली बार भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था की समीक्षा का प्रयास इन कवियों ने किया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के दौर में विकसित अकविता और नई कविता ने स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के भारतीय समाज के यथार्थ को सही अर्थ में अनुभव के स्तर पर भोगा और अभिव्यक्त किया है। उसने सत्य का अनुभव ही नहीं किया वरण अपनी बौद्धिक दृष्टि से अनुभवों का मूल्यांकन भी किया है।⁶ सन् 75 के बाद का दौर हिंदी कविता के विकास की दृष्टि से बहुत समृद्ध दिखाई पड़ता है। इस दौरान हिंदी कविता के क्षेत्र में बहुत से ऐसे कवि आए जिनमें जबरदस्त राजनीतिक चेतना विद्यमान थी। हिंदी कविता का यह दौर जो आपातकाल से प्रभावित होते हुए आगे बढ़ रहा था बेहद आश्वस्त करने वाला था। धूमिल और दुष्यंत कुमार जैसे कवि अपनी कविता और भजनों के माध्यम से भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था और उसके विकास यात्रा की समीक्षा और मूल्यांकन करते हैं। यह कविताएं नई कविता और अकविता आदि से अलग हटकर व्यापक रूप से सामाजिक सरोकारों और जनचेतना से जुड़ी हुई हैं। इन कविताओं का संसार आम जनता के सुख दुख और तत्कालीन राजनीतिक आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक विसंगतियों और यथास्थिति के विरुद्ध के मूल्यों कि अकोला हट से निर्मित हुआ है। सहजीवन यथार्थ और उसकी

अभिव्यक्ति वाली इन कविताओं ने कविता से उदासीन होते हुए पाठकों को कविता से जोड़ने का कभी काम किया। कवियों ने जटिल और उलझन भरी कविताओं की जगह साफ-सुथरी और स्पष्ट कविताएं लिखीं। श्रीकांत शर्मा का 'मगध', कुंवर नारायण का 'आमने-सामने' और विजय देव नारायण साही की 'साखी' आदि संग्रह की कविताओं को एक संदर्भ में देखा सकता है। इसी तरह टिकट के लिए मारामारी करते कांग्रेसी नेताओं की दशा और राजनीतिक व्यवस्था में विद्यमान उन चुनावी विसंगतियों की ओर इशारा नागर्जुन ने अपनी कविता 'आये दिन बहार के' में क्या है जिसमें हमारे नेताओं के लिए समाज के विकास के बदले किसी तरह पार्टी का टिकट प्राप्त करना और चुनाव जीतना ही मुख्य लक्ष्य है। जनकल्याण, नैतिकता और राजनीतिक शुचिता से उन नेताओं को कोई मतलब नहीं था। तत्कालीन राजनीतिक और चुनावी व्यवस्था पर नागर्जुन ने अपनी इस कविता में तीखा व्यंग किया है—

'श्वेत श्याम रतनार अखियां निहार के
सिंडिकेटी प्रभुओं की पगधूर झार के
दिल्ली से लौटे हैं कल टिकट मार के
खिले हैं दांत क्यों दाने अनार के
v k sfnu cgkj d A⁷

नागर्जुन के अलावे केदारनाथ अग्रवाल ने कांग्रेसी राज में भ्रष्टाचार, नैतिक पतन, जनता की भूख और गरीबी के चित्र अपनी कविताओं में खीचे हैं। केदारनाथ अग्रवाल ने तो बहुत पहले ही लोकतांत्रिक व्यवस्था के द्वारा दिखाए जा रहे रामराज्य की स्थापना के स्वर्ण के यथार्थ को पहचान लिया था और उसे जनता के समक्ष प्रस्तुत भी किया था। उन्होंने स्पष्ट कहा कि जिस व्यवस्था में गरीबों का शोषण करके अमीरों को और अधिक अमीर बनाया जाए उस व्यवस्था में आग लग जानी चाहिए भले ही वह रामराज्य ही क्यों न हो —

'ढोलक मढ़ती है अमीर की
चमड़ी बजती है गरीब की
खून बहा है रामराज में
आग लगे इस रामराज में।'⁸

80 के दशक में हिंदी कविता में विवश का दौर आरंभ हुआ। इन विमर्शों के मूल में एक प्रकार की चेतना कार्य कर रही थी जो दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक स्थितियों को बेहतर करने के उद्देश्य की भावना से संपन्न थी। 'दलित चेतना और नारी चेतना ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के नौवें दशक में आंदोलन का रूप धारण कर लिया। प्रत्येक व्यक्ति का एक मत का सिद्धांत नारी सशक्तिकरण और दलित सशक्तिकरण के मूल में है।' ⁹ भारत की आबादी में दलितों की एक बहुत बड़ी भागीदारी है। दलित चेतना के उभार का कारण केवल राजनीतिक मानना सही नहीं है। क्योंकि भारत में आरंभ से ही सभी समाज सुधारक और महापुरुष दलितों की कारुणिक दशा और उनके द्वारा सही जा रही यातनाओं से द्रवित हुए हैं। स्वाधीन भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था ने दलितों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और सचेत बनाने का कार्य किया। डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान, मोहनदास नैमिशराय आदि दलित चेतना के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में साहित्य सर्जना के क्षेत्र में नारी चेतना का व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'स्वाधीनता के बाद भारत में स्त्री शिक्षा का व्यापक प्रचार प्रसार हुआ इसके कारण नारी चेतना को हिन्दी साहित्य में एक आंदोलन के रूप में निर्मित होने में मदद मिली।'¹⁰ स्त्रियों के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक और व्यक्तिगत स्वाधीनता और अधिकारों की पक्षधरता में कविताएं लिखी गई। कात्यायनी, अनामिका, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्टा, प्रभा खेतान, चित्रा मुदगल जैसी स्त्री रचनाकारों ने

विभिन्न विधाओं में स्त्री चेतना से परिपूर्ण रचनाएं कीं। सन् 1991 ई. में भारत में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया आरंभ की गई। इस आर्थिक उदारीकरण और मुक्त व्यापार की व्यवस्था से एक तरफ जहां विकास की प्रक्रिया तेज हुई वहाँ दूसरी तरफ आदिम काल से आदिवासियों की संचित संपदा को लूटने का उपक्रम भी चालू हो गया। बड़े-बड़े देशी और विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा आदिवासियों को उनके मूल स्थान से विस्थापित कर जल, जंगल और जमीन का दोहन क्या जाने लगा। बीसवीं सदी के अंतिम दशक के ऐसे ही जटिल समय में शुरू हुआ आदिवासी विमर्श आदिवासियों की अस्मिता का विमर्श है और इसके केंद्र में आदिवासियों की जल, जंगल और जमीन की चिंता प्रमुख है। इस प्रक्रिया में आदिवासियों ने अपने लिए इतिहास के सूत्रों की तलाश नए सिरे से की। उन्होंने अपने नेताओं की पहचान की और अपने लिए नेतृत्व का निर्माण किया। उन्होंने समर्थ आदिवासी साहित्य की भी रचना की। अस्मितामूलक साहित्य की मुख्य विशेषता उसमें अभिव्यक्त प्रतिरोध है। आदिवासी विमर्श भी आदिवासी अस्मिता की पहचान तथा उसके अस्तित्व संबंधी संकटों और उसके खिलाफ जारी प्रतिरोध का साहित्य है। यह देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का विरोध करता है। यह जल, जंगल, जमीन और जीवन की रक्षा के लिए आदिवासियों के 'आत्मनिर्णय' के अधिकार की माँग करता है।

इक्कीसवीं सदी तक आते-आते स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में सांप्रदायिकता, पर्यावरण की चिंता, जल संकट, ग्लोबल वार्मिंग, लैंगिक विमर्श, राजनीतिक चेतना, आदि विषयों से संबंधित कविता लिखी जाने लगीं। स्वाधीन हिंदी कविता की विकास यात्रा पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि हिंदी कविता ने

पैरोकर

आजादी के बाद से अब तक अपना पर्याप्त विकास और विस्तार किया है। उसमें विविधता भी है और गहराई भी। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता का विकास किसी एक दिशा और ढर्म में न होकर बहुविषयक और बहुआयामी ढंग से हुआ है। वर्तमान में हिंदी कविता के क्षेत्र में नए पुराने कवियों की कई पीढ़ियां एक साथ रचना कर्म में प्रवृत्त हैं। हिंदी कविता के विकास के दृष्टिकोण से यह बहुत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ :

1. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, पानी प्रकाशन, संस्करण 2013, पृ. 215
2. अज्ञेय,(संपादक), दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पांचवां संस्करण, 2020, पृ. 86
3. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 144
- 4.अज्ञेय,(संपादक), दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पांचवां संस्करण, 2020, पृ. 99—100
5. अज्ञेय,(संपादक), तीसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, ग्यारहवां संस्करण, 2018, पृ. 222
6. डॉ. नरेंद्र, डॉ. हरदयाल, (संपादक), हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, संस्करण 2013, पृ. 637
7. रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण, 2018, पृ. 156
- 8.वही, पृ. 251
9. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 147
10. वही, पृ. 148

“जब तक एक युवती आधी रात में अकेली कुछ मील भ्रमण ना कर सके, तब तक मैं नहीं मानता कि हमारे देश की सभ्यता में विकास हुआ है।”

— पेरियार ई. वी. रामास्वामी

“नारी की उन्नति या अवन्नति पर ही राष्ट्र की उन्नति या अवन्नति आधारित है।

— अरस्तू

“शिक्षा तो एक साधनमात्र है। यदि उसके साथ सच्चाई, दृढ़ता, शान्ति आदि गुणों का सम्मिश्रण नहीं होता तो वह शिक्षा रुखी रहती है और लाभ के बदले कभी—कभी हानि पहुँचाती है। शिक्षा का उद्देश्य पैसा कमाना नहीं, बल्कि अच्छा बनना और देश—सेव करना है। यदि यह उद्देश्य सफल न हो तो शिक्षा पर किये गये खर्च को बेकार समझ सकते हैं।”

— महात्मा गांधी

ओमप्रकाश वाल्मीकि : साहित्य के संदर्भ में दलित चेतना

साहित्यकारों ने वर्षों से मानव समाज के आम जनता में चेतना लाने की दृष्टि से थोड़ा—बहुत साहित्य में लिखते आए हैं। लेखक के सहानुभूति और स्वानुभूति के आधार पर लिखते रहे। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और आत्मकथाविधा के साथ—साथ सभी विधाओं में दलित चेतना की अभिव्यक्ति हुई। ओमप्रकाश वाल्मीकि स्वयं सामाजिक आर्थिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक यानी हर परिस्थितियों से गुजरते जूझते सहते हुए जीवन संघर्षमय रूप में दलित समुदाय के प्रत्येक भावना का अपने साहित्य में भली—भाँति उकेरा है। दलित चेतना के रूप समाज के अंतिम पंक्ति के अंतिम सीढ़ी पर खड़े हो और जिनका दिमाग से मानवता का रूप, समता, की पहचान, स्वतंत्रता की पुकार एवं बंधुत्व का व्यवहार जैसे शब्द निकला है। उनमें से पहले भी थे जैसे कबीर, रैदास, महात्मा फुले और डॉ. अंबेडकर लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि दलितों की चेतना, शब्द को अपने लेखन से भारत में ही नहीं बल्कि विश्व में लोगों को सोचने, विचारने, गौर करने पर मजबूर किया। उनकी साहित्य में दलित चेतना हर विधाओं में भरपूर मिलता है। समकालीन साहित्यकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित चेतना से संपृक्त लेखकों में श्रेष्ठ हैं। लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार— ‘दलित चेतना का सीधा संबंध दृष्टि से है। जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ती है। वह है दलित चेतना दलित यानी मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे उत्पीड़ित किया गया, दबाया, कुचला गया— उनकी चेतना यानी दलित चेतना। यानी दलित चेतना दलित साहित्य की अंत ऊर्जा में नदी के तेज बहाव की तरह समाविष्ट है जो उसे पारपरिक साहित्य से अलग करती है। साथ ही दलित साहित्य,

नारायण दास (शोधार्थी)

हिन्दी विभाग

विद्यासागर विश्वविद्यालय (प. बंगाल)

दलित आंदोलन में एक अहम भूमिका निभाता है जो दलित मुक्ति का साहित्य है। दलित चेतना कोई श्रेणी नहीं है बल्कि मनुष्य के रूप में स्वयं को खड़ा करने की एक जद्दोजहद है। जो दलितों के अस्तित्व बोध का संघर्ष है। दलित चेतना अमानवीय व्यवस्था से बाहर आकर मानवीय सरोकारों की पक्षधरता के लिए प्रतिबद्ध है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा साहित्य में दलित चेतना के कई रूप व्यक्त हुए हैं। आत्मकथा ‘जूठन’ में बालक ओमप्रकाश वाल्मीकि को जब स्कूल में झाड़ू लगाते उसके पिता देखता है तो झाड़ू हाथ से छीनकर फेंक देता है और कहता है कि कौण—सा मास्टर है वो द्रोणाचार्य की औलाद जो उसके लड़के से पढ़ाने के बदले झाड़ू लगवाता है। यहाँ सामाजिक चेतना दिखती है।

‘सलाम’ कहानी संग्रह में ‘बैल की खाल’ कहानी में काले और भूरे नामक पात्र खाल खींचकर पैसा कमाते हैं और किसी तरह पेट भरता है इस काम को दोनों पात्र छोड़ चाहते हैं। कथाकार काले एवं भूरे में आर्थिक स्थिति को सुधारने की चेतना जागृत करते दिखते हैं सोच में बदलाव दलित चेतना का परिणाम है।

‘गोहत्या’ कहानी में कथाकार ने सुकका नाम के दलित पात्र के अस्तित्व का सवाल उठाता है सुकका गांव के चौधरी का खेती बाड़ी का काम करता है। सुकका का ब्याह होता है उसकी नई नवेली दुल्हन को चौधरी हवस का शिकार बनाने के लिए हवेली पर भेजने के लिए सुकका से कहता है तब सुकका अपनी दुल्हन को चौधरी के हवेली पर नहीं भेजता है साथ ही साथ उसका काम करना भी छोड़ देता है। यह चेतना का परिणाम है।

'अम्मा' में स्त्री चेतना और उसके अस्तित्व की पहचान बखूबी लेखक दर्शाते हैं। इस कहानी में अम्मा पारिवारिक स्थिति सुधारने की चेतना से घरों में जाकर साफ सफाई का काम करती है। चेतना के बदौलत अम्मा का बेटा शिवचरण दसवीं की परीक्षा पास करके नौकरी करता है। एक दिन अम्मा मिसेस चोपड़ा के घर सफाई करने जाती है। उस समय मिसेस चोपड़ा स्नान कर रही होती हैं। अम्मा बाथरूम साफ करने का पानी माँगती हैं मिसेस चोपड़ा अपनी प्रेमी विनोद को पानी देने को कहती हैं। वह पानी से भरा बाल्टी लाकर देता है जैसे अम्मा पानी बाथरूम में डालती हुई झाड़ू लगाना चाहती है विनोद पीछे से कस कर अम्मा की कमर पकड़ लेता है। उस समय अम्मा किसी तरह छुटकर विनोद को इतना झाड़ू मारती है कि विनोद चिल्लाता है तब मिसेस चोपड़ा आती हैं उसे छुड़ाती हैं। उस समय अम्मा कहती है भैंज जी इस हरामी के पिल्ले से कह देणा हर एक औरत छिणाल ना होवे हैं। यहां नारी चेतना एवं नारी अस्तित्व को स्पष्ट दिखाया गया है।

'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी में सुदीप के पिता सुदीप के पैदा होते वक्त गांव के साहुकार चौधरी से सौ रुपये कर्ज लेता है जिसका हिसाब चौधरी बताता है कि सौ रुपये का हर महीने पच्चीस रुपये ब्याज के बनते हैं चार महीने का ब्याज पच्चीस चौका डेढ़ सौ होता है। तूम अपना आदमी है डेढ़ सौ में से बीस कम करन देना। बचे एक सौ तीस। चार महीने का ब्याज एक सौ तीस अभी दे दो। मूलधन बाद में देना। सुदीप के पिता को चौधरी सुदीप के पिता को चौधरी बीस—पच्चीस वर्ष तक इसी तरह ठगता रहा परंतु मूलधन समाप्त नहीं होता है। सुदीप पढ़—लिख कर नौकरी करता है। पहली वेतन मिलने पर वह घर आता है। सुदीप पिता का समझाने के लिए पच्चीस—पच्चीस रुपये की ढेरिया माँ—पिता के

सामने रखता है तब उसके पिता को समझ में आता है कि पच्चीस चौका सौ होता है डेढ़ सौ नहीं। यह चेतना का ही परिणाम है। कथाकार ने पूंजीपतियों द्वारा किए जाने वाला गरी निरक्षर दलितों दलितों के शोषण का पर्दाफाश करता है।

'जंगल की रानी' कहानी में मैट्रिक पास एक पहाड़ी लड़की को 'ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिविर' के उद्घाटन समारोह के अवसर पर देखकर डी.एस.पी. और विधायक सभी उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहते हैं। विधायक जो एक समाज का दर्पण होता है, डिप्टी कमिश्नर जो पूरे जनपद की समस्याओं को देखता है, लोगों का पालक होता है। पुलिस अधीक्षक जो पूरे जिले में लोगों को सुरक्षा प्रदान करता है, वह सभी उस पहाड़ी लड़की कमली का राजनीतिक चाल से शहर बुलाते हैं। विधायक की कार में कमली को लाया जाता है और गैट हाऊस में उस पर तीनों भेड़े की तरह टूट पड़ते हैं। जंगल की रानी कमली को राजनीतिक दरिंदों ने अपनी गंदी राजनीति का शिकार बनाना चाहा परंतु कमली दलित चेतना के कारण हारी नहीं उसने अपनी प्राण दाव पर लगा दी और मृत्यु को गले लगा लिया परंतु आत्मसम्मान एवं दलित अस्मिता का आंच तक न आने दी। कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने राजनैतिक दलित चेतना के विभिन्न रूपों को यथार्थ में अभियक्ति प्रदान की है।

'दो चेहरे' नाटक में दलित नारी चेतना का नाटककार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस प्रकार दर्शाया है कि शिवराज सिंह संतों से कहता है कि तुम मेरे साथ शहर चल। तुम्हारे पिता बजरंगी को कर्ज से मुक्त कर दूँगा। उस समय संतों अपनी साहस और चेतना का प्रदर्शन करती है— "शिवराज बबू ! म्हारी बेबसी का और ज्यादा इम्तहान मत लो। थारी नजर में म्हारी भले ही कोई औकात न हो, पर इतना याद रशियो म्हारी भी कोई मान—मर्यादा

होती है उसे ललकारने की कोशिया मत करो ... औरन यहां से चले जाओ ... इस टेम।”¹ दलित कविता में दलित चेतना का एक नया रूप उभार कर सामने आया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविता में मनुष्य की आंतरिक छटपटाहट को सहजता के साथ उकेरा है जिससे मनुष्य को जिजीविषा की कविता बनता दीखता है। सामाजिक शोषण के विरुद्ध खड़े होकर उसने दलित अस्मिता की पहचान का सवाल उठाया है। मनुष्य की स्वतंत्रता और बंधुता उनके लिए सबसे प्राथमिक है। मानवीय मूल्यों को स्थापित करना उनका उद्देश्य है। ‘ठाकुर का कुंआ’ कविता की ये पंक्तियां—

“कुंआ ठाकुर का / पानी ठाकुर का /
खेत—खलिहान ठाकुर के / गली—मुहल्ले ठाकुर
के / फिर अपना क्या ? / गांव ? / शहर ?
देश ?”²

दलित कविता में दलितों के आक्रोश, संघर्ष घृणा जब उभर कर आया है तो गैर दलित अपने—आप को अनजान बनकर बात करते हैं कि समाज सब ठीक है तो कवि सवाल उठाते हैं। ये पंक्तियां ‘घृणा और प्रेम कहां से शुरू होते हैं’ कविता से—

“याद करो / उस सरकारी कलर्क का चेहरा /
जिसे पानी पिलाने से कतराता है / चपरासी
इन सबके बावजूद भी / तुम नहीं जानना चाहते
घृणा और प्रेम कहां से शुरू होते हैं।”³

कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि हते हैं कि अब झाड़ू पकड़ने के बदले उसके पिता जी हाथ में कलम दे गये हैं मरते वक्त कालग्रस्त अंधेरों की सिसकियां और मुकित का घोषणा पत्र लिखने के लिए इसलिए अब मुश्किल है झाड़ू लगना। ‘अच्छा ही हुआ’ कविता से ये पंक्तियां द्रष्टव्य के लिए इसलिए अब मुश्किल है झाड़ू लगना। ‘अच्छा ही हुआ’ कविता से ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

“मरते मरते मेरा बाप / थमा गया / मेरे हाथ में

कलम / झाड़ू की जगह / कालग्रस्त अंधेरों की सिसकियां / और मुकित का घोषणा—पत्र / लिखने के लिए।”⁴ ओमप्रकाश वाल्मीकि का संपूर्ण कथा साहित्य दलित समाज को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का दर्शन कराता है और साथ ही दलित चेतना को सार्थकता प्रदान करता है। दलित चेतना, दलित समुदाय का एक नई दिशा प्रदान करती है। दलित समाज के लोग आज दलित चेतना के कारण ही उच्च वर्गीय समाज में अपना रुतबा कायम करने में कामयाब रहे हैं। दलित चेतना के कारण दलित वर्ग ने अपने आप में आज बहुत सुधार कर लिया है तथा उन्नति की ओर अग्रसर भी है।

संदर्भ :

- वाल्मीकि ओमप्रकाश, ‘दो चेहरे नाटक’ प्रथम संस्करण—2012, गौतम बुक सेंटर, सी—263, ए, चंदन सदन, गली नं. 9, हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली—100093, पृ. 27
- वाल्मीकि ओमप्रकाश, ‘सदियों का संताप’, प्रथम संस्करण—1989, द्वितीय संस्करण, गणतंत्र दिवस—2008, गौतम बुक सेंटर, सी—263, ए, चंदन सदन, गली नं. 9, हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली—100093, पृ. 11
- वाल्मीकि ओमप्रकाश, ‘घृणा और प्रेम कहां से शुरू होते हैं, (बस्स बहुत हो चुका, काव्य संग्रह), प्रथम संस्करण—1997, आवृति 2017, वाणी प्रकाशन 4676, 21 ए दरियांगंज, नयी दिल्ली—110002, पृ. 43
- वाल्मीकि ओमप्रकाश, ‘अच्छा ही हुआ’ (अब और नहीं, काव्य संग्रह), पहला संस्करण—2009, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रावेइट लिमिटेड, 4 / 31 ए, अंसारी रोड, दरियांगंज नई दिल्ली—110002, पृ. 103

कटघरे से बाहर का कवि जानकी वल्लभ शास्त्री

डॉ. अणिमा

हिन्दी साहित्य के इतिहास में बहुत कम ऐसे रचनाकार हुए हैं जिनके साहित्य लेखन का क्षेत्र साहित्य की लगभग सभी विधाएँ रही हो और उन विधाओं की आलोचकीय कसौटी पर रचनाकार 24 कैरेट शुद्ध खड़ा उतरा हो। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री हिन्दी के ऐसे ही रचनाकार हैं जिन्होंने साहित्य की विविध विधाओं की लगभग पाँच दर्जन कृतियाँ हिन्दी को दी हैं, जिनमें 'राधा' जैसे महाकाव्य, 'कालिदास' जैसा उपन्यास 'साहित्य दर्शन' जैसे आलोचना ग्रंथ और 'हंसबलाका' जैसा संस्मरण ग्रंथ शालिल है। संस्कृत की पृष्ठभूमि लिए हुए इस रचनाकार पर अपने शुरुआती लेखन पर उस समय के यशस्वी कवि निराला का भी प्रभाव रहा है।

जानकी वल्लभ शास्त्री की पहचान बाद के दिनों में एक सफल गीतकार के रूप में हुई। छायावादोत्तर युग के गीतों में इनकी रचनाएँ विशिष्ट स्थान रखती हैं। अलौकिक एवं लौकिक दोनों ही ही प्रकार के गीतों में इनकी तीव्र अनुभूतियों के स्वर स्पष्ट हैं। अपने गीतों में वे प्रेम के बाद सर्वाधिक महत्व प्रकृति को देते हैं। उनके काव्य में प्रकृति के शुद्ध सौन्दर्य का चित्रण तो करते ही है साथ ही साथ प्रकृति के माध्यम से सामाजिक विषमता पर भी तीखा व्यंग्य करते हैं। जैसे कि हम जानते हैं कि ये छायावाद युग के उत्तरकाल के कवि हैं, अतः इनमें छायावादी सूक्ष्मता और जटिलता नहीं है। इनके छायावादी गीतों के वातावरण से अलग हैं। इसलिए उनके गीत पाठकों पर अपना एक विशिष्ट प्रभाव छोड़ते हैं। वैसे साहित्य ज्ञान में गीत लिखने वालों की लम्बी परंपरा रही है और गीत लेखन की वजह से उनकी पहचान भी साहित्य जगत

में विशिष्टता है। विद्यापति रवीन्द्रनाथ टैगोर निराला आदि ऐसे ही उदाहरण हैं, लेकिन इन महान विभूतियों के बीच एक गीतकार के रूप में आचार्य शास्त्री की पहचान विशिष्ट है। इसलिए इनके गीतों से प्रभावित होकर रामवृक्ष बेनीपुरी ने इसके गीतों की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए लिखा— 'एक अशान्त आत्मा जिसके कण्ठ में कोमल स्वर, मस्तिष्क में सपेक्ष कल्पना और हृदय में भावना का सागर! जहाँ एक ही साथ समुद्र का हाहाकार, पंछी का कलरव और वंशी की तान।'¹ कहना न होगा कि रामवृक्ष बेनीपुरी की यह टिप्पणी उनके गीतों के संदर्भ में बहुत कुछ कह देती है। उनके गीतों में एकरसता नहीं है उसमें विविधता है। विविधता उनके गीतों की खास पहचान है जिसकी वजह से पाठक उनके गीतों को पढ़कर मुग्ध भी होता है और बेचैन भी। जिसके गीतों में हाहाकार, कलरव और वंशी की मीठी तान एक साथ मिलें, जाहिर है ऐसे गीत लिखने के लिए कठिन साधना की आवश्यकता हुई होगी और आचार्य शास्त्री साहित्य साधक थे इसमें दो राय नहीं हो सकती। गीतों के प्रति लगाव और उसकी रचना —प्रक्रिया को उन्होंने खुद कहा भी है— 'गीत मेरा सहज स्वभाव है सही, किन्तु मैं गीत को काव्य की दूसरी सभी विधाओं की तुलना में अति कठिन मानता हूँ। शेष विशेषताओं के साथ गीत की रचना करना कुछ हँसी—लेखन नहीं है। गीत वेद की बहुतेरी ऋचाएँ, कबीर—सूर—तुलसी—मीरा के द्रवित ज्ञान और अचल प्यार के श्वासोच्छ्वास, विद्यापति चण्डीदास के आन्तरिक लालित्य और माधुर्य के अजस्त्र स्रोत, टैगोर और निराला की मानसिक आध्यात्मिक उठान के चित्र—स्वर। मेरा संपूर्ण

व्यक्तित्व गलकर शब्दों में ढल सकता— तो मेरे गीतों की भावभूमियों में और अधिक विविधता होती।² बड़ा रचनाकार वह होता है जो अपनी सीमा को पहचाने, जानकी वल्लभ शास्त्री इसलिए बड़े गीतकार हुए, चूंकि उन्हें अपनी सीमा का ज्ञान था, गीत विधा की चुनौती से वे परिचित थे। उन्हें मालूम था कि इस विधा में लिखने वालों की एक श्रेष्ठ परंपरा रही है इसलिए अपनी विशिष्ट पहचान बनाने के लिए कुछ अलग करना होगा, और उन्होंने किया भी। इसलिए उनके गीतों में आकर्षण की एक विशिष्ट क्षमता है—

‘कौन देगा स्थान इस तूफान में?
मैं चलूंगा सिर्फ चलने के लिए,
मैं जलूंगा सिर्फ जलने के लिए,
खाक मंजिल का पता मुझको नहीं,
कौन देगा स्थान इस अभियान में।’³

हिन्दी साहित्य के काव्य इतिहास पर अगर नजर दौड़ाएँ तो एक खास समय में खास पैटर्न की कविताएँ लिखी गई, चाहे छायावाद का समयान्तराल हो गया फिर प्रगतिवाद का समयान्तराल सवाल यह है कि किसी खास समय में लिखने वाला कवि उस समय की विशेषताओं से अलग हटकर क्या रचना कर सकता है ? यानि कवि समय का अतिक्रमण करते हुए वही रचाकार रचना कर सकता है, जो विशिष्ट हो, कहा भी गया है— लीक छाड़ि तीनों चलैं शायर, सिंह सपूत | मैं जानकी वलभ शास्त्री को इस मामले में विशिष्ट कवि मानती हूँ कि उत्तर छायावादी कवियों में लीक छोड़कर चलने वाले कवियों के रूप में वे अपनी पहचान बनाने में सफल रहे। जाहिर है इसके जोखिम भी है, जैसा कि उनके साथ हुआ भी। जिस समय वे रचना कर रहे थे, आलोचकीय निगाह से वे प्रायः ओझल ही रहे, या कह सकते हैं कि

आलोचकों ने उस समय उनके काव्य का वैसा मूल्यांकन नहीं किया जैसा होना चाहिए था, वैसे होता भी आया है कि लीक छोड़कर चलने वालों की पहले आलोचना ही होती है प्रशंसा बाद में। इनके साथ भी यही हुआ वे छायावादी होते हुए भी छायावादी नहीं हैं या कह सकते हैं कि वे किसी भी कठघेरे के परे हैं और सभी कठघेरे में समाहित भी है, यह वह बात है जो उनके काव्य को विशिष्ट बनाता है। डॉ. रेवती रमण ने इसी ओर संकेत करते हुए लिखा है— ‘बीसवीं शताब्दी अंग्रेजी साम्राज्यवाद के देशव्यापी वर्चस्वता और संक्रमण की शताब्दी है तो उससे लगातार हमारी जातीय अस्मिता के मुक्ति-संघर्ष की भी शताब्दी है। इसमें ठेठ साहित्यिक कहे जाने वाले भी कई छोटे-बड़े आंदोलन हुए। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता, नवगीत समकालीन साहित्य जैसी प्रवृत्तियों और आंदोलनों का जिक्र साहित्यितिहास लेखक करते हैं। शास्त्री जी को इनमें से किसी भी एक के सांचे में व्यवस्थित कर पाना असंभव है। लेकिन ये ऐसे आंदोलन हैं, जो इनके सामने ही उठ-उठकर गिरे हैं और कोई ठान ले तो उनकी सुदलीर्ध कविता यात्रा में इनसे आत्मीय संवाद के स्फुट संकेत चिन्ह ढूँढ़ सकता है।’⁴ वैसे देखा जाए तो जानकी वलभ शास्त्री की काव्य यात्रा लगीग 50 वर्षों की रही। और इन वर्षों में सर्वाधिक चर्चित कवि निराला रहे और निराला खुद आचार्य शास्त्री की साहित्यिक प्रतिमा के प्रशंसक रहे। उन्होंने कहा भी है— श्री जानकी वलभ शास्त्री, शास्त्राचार्य हिन्दी के श्रेष्ठ कवि, आलोचक और कहानी लेखक हैं। और यह भी एक संयोग है कि आचार्य शास्त्री निराला को अपना गुरु मानते रहे, और काव्य गुरु निराला का संबंध छायावाद से रहा इसलिए आचार्य शास्त्री को छायावाद से जोड़कर देखा गया। लेकिन जैसा कि हम जानते हैं गुरु

मानना अलग बात है और अनुसरण करना अलग बात। जानकी वल्लभ शास्त्री ने अनुसरण नहीं किया। बावजूद इसके बहुत से आलोचकों ने उन्हें छायावाद के पांचवे कवि के रूप में देखा। वैसे छायावाद के घेरे में बाधने का सर्वप्रथम प्रयास आचार्य नलिन विलोचन शर्मा का है जो उनके मित्र, प्रशंसक और उनके काव्य प्रवक्ता भी रहे। ‘अवंतिका’ की भूमिका में उन्होंने लिखा—प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के बाद हिन्दी कवि की निर्झरिणी समतल भूमि पर प्रवाहित होने लगी और अनेक धाराओं में। इनमें से जिस एक सदानीरा धारा ने तट—तरु का उच्छेद किए बिना अपने को उर्वर और स्निग्ध बनाया, दिशाओं को अपनी कल ध्वनि से मुखरित किया, वह स्रोत से कभी विच्छिन्न भी नहीं हुई। इस धारा के भागीरथ आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री है। यदि प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के बाद मुझ से हठात पांचवां नाम लेने छायावाद से रहा इसलिए आचार्य शास्त्री को कहा जाय तो वह नाम शास्त्री जी का ही होगा। बहुत माथा खुजलाने के बाद भी पांचवां नाम यही रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।⁵ बहरहाल इतना तो तय है कि आचार्य शास्त्री उत्तर छायावाद काल से लेकर अब तक रचनाशील कुछ एक समर्थ कवियों में एक विशिष्ट कवि हैं। वे भारतीय कविता की सांस्कृतिक विरासत के साथ सीधे जुड़ते हैं। एक बड़े रचनाकार होने के नाते उनकी रचनाओं में उनका समय और युग भी प्रतिबिम्बित होता है। वे संस्कृत के भी उसी स्तर के रचनाकार हैं। जिस स्तर के हिन्दी के हैं। जैसा कि हम जानते हैं कविता के अतिरिक्त आलोचना संस्मरण, कहानी उपन्यास और नाटक भी उनका मूल्यावान लेखन हैं। उनकी काव्य प्रतिभा पांडित्य, परंपरा आधुनिकता लोक—शास्त्र रथूल—सूक्ष्म व्यष्टि समष्टि, यथार्थ रहस्य आदि का संग्रहित

काव्य हैं। कालक्रम की दृष्टि से किसी ने उन्हें छायावाद के पांचवे स्तम्भ तो किसी ने छठे स्तंभ के रूप में देखा। किसी ने उन्हें विदग्ध पंडित कवि कहकर आधुनिक चेतना से अलग—थल रखा तो किसी ने उन्हें आर्शकाव्य परंपरा का महान कवि स्वीकार किया। साहित्यिक खेमेबंदी, गुटबंदी, वाद—विवाह के घेरे में उन्हें समेट कर देखने पर खने का प्रयास किया गया। लेकिन सच तो यह है कि वे आज भी आलोचना जगत द्वारा उपेक्षित ही रहे हैं।

आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री हमारे लिए सिर्फ इसीलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि सन् 1932 से लगातार एक स्तर पर अपनी खास पहचान बना कर अपनी भंतिगमा के साथ लिखते रहें, बल्कि इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं कि वे अपनी कविता के प्रति एकनिष्ठ रहे हैं, राजनैतिक परिवर्तनों के साथ निष्ठा में उन्होंने परिवर्तन नहीं किया। उनकी कविताओं में संवेदना और विचार का संतुलन बना रहा। उन्होंने काव्य की जिस विधा को अपनाया उस विधा को समृद्धि प्राप्त हुई। उन्होंने काव्य सिर्फ लिखने के लिए नहीं लिखा बल्कि कुछ कहना था, कहने का लायक कुछ तयि थे, कुछ गहरे अनुभव थे, कुछ उदग्र अनुभूतियाँ थी, इसलिए लिखा है। वे अपने समकालीन कवियों से भिन्न स्तर पर काव्य रचना कर रहे थे। कुल मिलाकार छायावादयुगीन कवि होते हुए भी छायावाद की आत्मोन्मुखता से बचते हुए वे भारतीय परंपरा को साथ लिए हुए वे संसारोन्मुख कवि हैं।

संदर्भ सूची :

1. रूप—अरूप, जानकी वल्लभ शास्त्री, कवर पृष्ठ से उद्धृत
2. उत्पलदल, जानकी वल्लभ शास्त्री, पृ. 28
3. रूप—अरूप, जानकी वल्लभ शास्त्री, पृ. 61
4. उत्तम—पुरुष, सं. रेवतीरमण, पृ. 6
5. अवन्तिका, जानकी वल्लभ शास्त्री, पृ. 1

विश्व साहित्य में उपन्यास का उदय (यूरोपीय एवं भारतीय संदर्भ)

अर्थ, स्वरूप, परिभाषा :

मानवीय राग, मनोभाव, विचार, अनुभूति, स्वप्न एवं कल्पना की कलात्मक आभिव्यक्ति ही साहित्य है। साहित्य की विविध विधाएँ काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी आदि सभी अपने—अपने ढंग से जीवन की व्याख्या करते हैं। किन्तु महाकाव्य, नाटक तथा कहानी द्वारा प्रस्तुत जीवन की व्याख्या में यार्थथता की वह प्रतीती नहीं होती जो उपन्यास में होती है।

इसलिए आधुनिक विधाओं में उपन्यास सबसे अधिक प्रसिद्ध, एवं सफल साहित्यिक विधा है। इसविधा का सर्वाधिक व्यापक प्रचार एवं प्रसार पूरे विश्व साहित्य में हुआ है। इसका कारण यह है कि उपन्यास में जिस सहज, स्वाभाविक जीवन का चित्रण होता है। उसका अभाव साहित्य की अन्य विधाओं में होता है। काव्य में अलंकारों के माध्यम से तथा कवित्वपूर्ण शैली में प्रस्तुत चित्रण में स्वाभाविकता का अभाव होता है। नाटक में नाट्यकला की सीमाओं के कारण अन्तश्चेतन मस्तिष्क का सजीव विश्लेषण प्रस्तुत नहीं हो सकता। कहानी जीवन की एकपक्षीय व्याख्या मात्र है। इसके विपरीत उपन्यासों में चिर परिचित वातावरण की पृष्ठभूमि में नैसर्गिक जीवन अपने समग्र परिवेश के साथ उपस्थित होता है। इसके अतिरिक्त वह साहित्य के विविध रूपों से उपकरण ग्रहण कर अपनी शक्ति की अभिवृद्धि करता है। इसमें निबंध जैसी वर्णनात्मकता के साथ—साथ गद्य काव्य जैसी भावुकता भी दृष्टिगत होती है।

डॉ. सुरेश सिन्हा के शब्दों में—“उपन्यास यथार्थ की प्रतिष्ठाया है, जिससे मानव जीवन की चित्रण होता है। अतः उपन्यास का यथार्थ

नगीना लाला दास (शोधार्थी)

हिन्दी विभाग

कलकत्ता विश्वविद्यालय (प. बंगाल)

व्यापक रूप से सामाजिक होता है। उपन्यास का विषय प्रमुखतः मनुष्य के सामाजिक जीवन से संबंधित होता है जो अनेक विषमताओं, द्वंद्वों एवं संघर्षों में घिरा शोषण का शिकार बना रहता है और उपेक्षणीय एवं दयनीय जीवन जीता है। उपन्यास इस प्रकार वाह्य उसका पूर्ण ईमानदारी से चित्रण करता है। वह एक विषयीगत दर्पण के समान है। जिसमें बहुमुखी मानवीय समस्याओं का चित्रण होता है।”¹

यही कारण है कि साहित्य की विविध विधाओं में उपन्यास का विशिष्ट स्थान है। अतएव इसके पठन से जिस आनन्द की अनुभूति होती है वह साहित्य की अन्य विधाओं में संभव नहीं है। श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में—‘उपन्यास यूरोप में— जहाँ उसका प्रवर्तन हुआ और बंगाल में जहाँ उसका भारत में प्रथम अवतरण हुआ दोनों जगह सामाजिक यथार्थ की समस्या से जुड़कर आगे बढ़ता है।’² उपन्यास में वर्णित वर्ग संघर्ष वास्तव में कुछ और नहीं दास्ता एवं शोषण तथा समस्त शक्तियों के केन्द्रीकरण की आइडियोलॉजी के विरुद्ध जनता का संघर्ष ही है यह संघर्ष अधिक व्यापक अर्थों में धार्मिक रुद्धियों, निर्दयता एवं अत्याचार का भी प्रतीक बन जाता है। संसार में प्रत्येक चीज गतिशील है। परिवर्तनशील है और उसका अपना इतिहास है। सामाजिक सामंती जिसका उपन्यासकार चित्रण करता है भी इस नियम का अपवाद नहीं है।

उपन्यास शब्द ‘उप’ और ‘न्यास’ दो शब्दों के योग से बना है। ‘उप’ शब्द से ‘समीप’

या निकट का तथा 'न्यास' शब्द से रखने अथवा उपस्थित करने का बोध होता है। उपन्यास के माध्यम से लेखक पाठकों के समुख विचार उपस्थित करता है। 'उपन्यास' संस्कृत शब्द है परंतु वर्तमान में इस शब्द को जिस रूप में प्रयुक्त किया जाता है। वह प्राचीन अर्थ से पूरी तरह अलग है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपन्यास शब्द का प्रयोग नाटक की संधियों के उपभेद हेतु हुआ है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपन्यास शब्द का प्रयोग नाटक की संधियों के उपभेद के लिए हुआ है। प्राचीन संस्कृत के लक्षण ग्रंथों में इसकी व्याख्या दो प्रकार से की गई है— "उपन्यास, प्रसादनम्" अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहते हैं तथा" उत्पत्ति कृत्तार्थ उपन्यास : प्रकीर्तिः"³ अर्थात् किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप में प्रस्तुत करना उपन्यास कहलाता है। उपन्यास आधुनिक जीवन की विषमताओं, विचित्रताओं, समस्याओं तथा मान की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को सफल अभिव्यक्ति देने के लिए आया है। डॉ. त्रिभुवन सिंह के शब्दों में— "उपन्यास आधुनिक युग की देन है जो भारतीय संस्कृति के रस से सिक्त होकर पूर्ववर्ती साहित्य की आधार भूमि में उगकर विज्ञान किरणों से उष्मा प्राप्त कर पाश्चात्य साहित्य की सुखद वायु में पुष्पित एवं पल्लवित हो रहा है।"⁴ वास्तव में उपन्यास ने मानव चेतना का विशद और गम्भीर बनाया है। जीवन का प्रभावोत्पादक और रोचक निरूपण होता उपन्यास के द्वारा ही होता है। एक ओर जहाँ नाटक और कविता के आधारभूत नियम निश्चित है वही उपन्यास को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों की कमी है। फलतः उपन्यास अपने स्वरूप में उन्मुक्त है जीवन की खुली अभिव्यक्ति करने में सक्षम है। डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी के शब्दों में— "उपन्यास आधुनिक युग की कठोर वास्तविकता के चित्रण का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है।"⁵

मानवीय चिंताओं का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करने के कारण उपन्यास साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विधा बन गई है। कोई भी साहित्य रूप उपन्यास की प्रमुखता को अपदस्थ नहीं कर पाया है। उपन्यास अपने काल की विविध प्रवृत्तियों, द्वन्द्वों, ऐतिहासिक स्थितियों का उद्घाटन करता है।

उपन्यास का उदय : यूरोपीय एवं भारतीय संदर्भ :

मानव सभ्यता के इतिहास में कथा साहित्य का संसार बहुत बड़ा है यही कारण है कि किसी एक भाषा में विश्व की सभी भाषाओं में प्राप्त साहित्य—विधाओं के उद्भव और विकास का प्रमाणिक विवरण उपलब्ध नहीं है। उपन्यास अपने विभिन्न अभिधानों के साथ एक विश्वव्यापी साहित्य विधा है। पर यह बताना बहुत मुश्किल है कि संसार का प्रथम उपन्यास कौन है। इसका कारण है विश्व की समस्त भाषाओं में लिखित तुलनात्मक उपन्यास साहित्य का प्रमाणिक विवरण कम मात्रा में उपलब्ध है। उपन्यास की कोई निश्चित परिभाषा भी करना अत्यंत कठीन है उपन्यास की कोई सर्वसम्मत परिभाषा कमी की हो सकेगी, कहना मुश्किल है। इन परिस्थितियों में विश्व साहित्य में उपन्यास की उदय की कहानी को तनिक विनम्रता और आत्मसंयम के साथ ही प्रस्तुत कियाजा सकता है। डेनिस सौरा (Denis Sourat) के अनुसार "उपन्यास का सबसे पुराना उदाहरण मिश्र के साहित्य में मिलता है। मिश्र सबसे पुराना उदाहरण मिश्र के साहित्य में मिलता है। मिश्र साहित्य में लगभग 2000 ई. पूर्व से ही 'नॉवेल' (उपन्यास) और 'स्टोरीज' (कहानियाँ) उपलब्ध होने लगती है।"⁶

यूरोपीय उपन्यास के विकास की दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी अत्यंत समृद्ध है। इस

शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजी में जेन ऑस्टिन के प्रमुख उपन्यास है— सेन्स एण्ड' सेन्सिबिलिटी (1814), 'एम्पा' (1816), 'नॉर्थ गड़र एजे तथा 'परसुएशन (1818 ई.) उसने समकालीन साहित्यिक फैशन का उपहास किया। इससे यह स्पष्ट है कि 20वीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक विश्व साहित्य में उपन्यास की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। यूरोप में उपन्यास विकास उसके बाद भी होता रहा और आज भी इसकी सम्भावनाएँ बन हुई हैं। 20वीं शताब्दी में यूरोप में उपन्यास के विकास का इतिहास कई में में देखा जा सकता है। कोई भी विधा समाज और युग की विशिष्ट परिस्थितियों के भीतर से ही जन्म लेती है। यह हम सब जानते हैं कि महाकाव्य प्राचीनतम साहित्य रूप है। रामायण और महाभारत हमारे यहाँ इसके उदाहरण हैं। महाकाव्य मूल: मौखिक साहित्य रूप रहा है मौखिक और गए। गण समाज के साथ ही उस तरह के महाकाव्य की कल्पना जुड़ी थी। सामंती समाज में उसका परिष्कार और विकास सम्भव हुआ। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया को धन से देखे और विचार करें कि क्यों सामंती युग के अंत के साथ महाकाव्य की सम्भावना क्षीण होती गई।

यूरोप में उपन्यास का लेखन 18वीं सदी में शुरू हो गया था। लेकिन भारत में भारतीय भाषाओं में उपन्यास सीधे—सीधे आधुनिक काल की देन है। जिसकी शुरूआत 19वीं सदी से होती है। आगे पीछे सभी भारतीय भाषाओं में उपन्यास आधुनिक काल में ही संभव हुआ। रेवती रमण अपने लेख “भारतीय उपन्यास का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन शीर्षक सभी में लिखा है— “आधुनिक भारत में उपन्यास का उदय पाश्चात्य शिक्षा सम्यता के प्रसार के दौरान हुआ। भारतीय उपन्यास शुरू में उपदेशाख्यान की शैली में लिखे गए।” 1857 में पहले स्वतंत्रता संग्राम का आरंभ माना जाता है— यानी बंगाल के आधुनिक काल के काफी बाद। अंग्रेजों ने आने के साथ ही कई काम किये समाज की आर्थिक संरचना थोड़ी बदली। जमीदार, महाजन, किसान मजदूर जैसी वर्गीय पहचान बनी। नये वर्ग संबंध बने। उपनिवेशवाद ने नया ढाचा बनाया। प्रेस की स्थापना के साथ छपाई कला विकसित हुई। अखबार निकलने लगे। भारतेन्दु युग में कई पत्रिकाएँ निकली। नयी तरह की शिक्षा पद्धति का आरंभ हुआ जिसे अंग्रेजी शिक्षा के नाम से जाना गया। मध्यवर्ग प्रमुख रूप से सामने आया। स्त्री शिक्षा के पक्ष में स्थितियाँ बनी और उसका विस्तार हुआ। स्त्रियों से संबंधित पत्रिकाएँ की निकली। यूरोप में उपन्यास का लेखन 18वीं सदी में शुरू हो गया था। लेकिन भारत में भारतीय भाषाओं में उपन्यास सीधे—सीधे आधुनिक काल की देन है। जिसकी शुरूआत 19वीं सदी से होती है। आगे पीछे सभी भारतीय भाषाओं में उपन्यास आधुनिक काल में ही संभव हुआ। रेवती रमण अपने लेख “भारतीय उपन्यास का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन शीर्षक सभी में लिखा है— “आधुनिक भारत में उपन्यास का उदय पाश्चात्य शिक्षा सम्यता के प्रसार के दौरान हुआ। भारतीय उपन्यास शुरू में उपदेशाख्यान की शैली में लिखे गए।” 1857 में पहले स्वतंत्रता संग्राम का आरंभ माना जाता है— यानी बंगाल के आधुनिक काल के काफी बाद। अंग्रेजों ने आने के साथ ही कई काम किये समाज की आर्थिक संरचना थोड़ी बदली। जमीदार, महाजन, किसान मजदूर जैसी वर्गीय पहचान बनी। नये वर्ग संबंध बने। उपनिवेशवाद ने नया ढाचा बनाया। प्रेस की स्थापना के साथ छपाई कला विकसित हुई। अखबार निकलने लगे। भारतेन्दु युग में कई पत्रिकाएँ निकली। नयी तरह की शिक्षा पद्धति का आरंभ हुआ जिसे अंग्रेजी शिक्षा के नाम से जाना गया। मध्यवर्ग प्रमुख रूप से सामने आया। स्त्री शिक्षा के पक्ष में स्थितियाँ

काल के काफी बाद। अंग्रेजों ने आने के साथ ही कई काम किये समाज की आर्थिक संरचना थोड़ी बदली। जमीदार, महाजन, किसान मजदूर जैसी वर्गीय पहचान बनी। नये वर्ग संबंध बने। उपनिवेशवाद ने नया ढाचा बनाया। प्रेस की स्थापना के साथ छपाई कला विकसित हुई। अखबार निकलने लगे। भारतेन्दु युग में कई पत्रिकाएँ निकली। नयी तरह की शिक्षा पद्धति का आरंभ हुआ जिसे अंग्रेजी शिक्षा के नाम से जाना गया। मध्यवर्ग प्रमुख रूप से सामने आया। स्त्री शिक्षा के पक्ष में स्थितियाँ

बनी और उसका विस्तार हुआ। स्त्रियों से संबंधित पत्रिकाएँ की निकली।

उपन्यास का उदय यूरोप में हुआ, भारत या व्यापक तौर पर एशियाई या किसी अन्य द्वीप में नहीं। उपन्यास विधा की शुरूआत नहीं। उपन्यास विधा की शुरूआत लगभग 17वीं शताब्दी के अंत में हुआ। सत्रहवीं शदी के उत्तरार्द्ध में उक्त पूँजी के प्रसार के परिणाम स्वरूप उससे प्रेरणा पाकर इंग्लैण्ड में राजीति क्रांति हुई और उसने पुरानी व्यवस्था को पूरी तरह तहस—नहस करके एक नई विवेकवान और मनुष्य केन्द्रित व्यवस्था की नींव डाली। इस क्रांति को फ्रॉमवैल की क्रांति कहा जाता है। यह क्रांति 1642 में शुरू हुई थी और 1648 ई. में इसका सफल समापन हुआ था। क्रामवैल को व्यापारी वर्ग तथा वैज्ञानिक सोच से भरपूर जनता का साथ मिला। इंग्लैण्ड का महान कवि इस क्रांति में पूरी भागीदारी के साथ लगभग प्रचारक की हैसियत से शमिल था। क्रांति के दौरान नित् नए तर्कशील विचारों का विकास हो रहा था आज प्रेमचंद की रचनाओं में से वह लेख निकल कर पढ़ने पर पता चलता की कि जहाँ उन्होंने क्रामवैल की शामिल का ऐतिहासिक महत्व हिन्दी के पाठक को समझाया है।

श्रीसत्यकाम के शब्दों में— “इंग्लैण्ड में पन्द्रवी शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजी गद्य का अस्तित्व लगभग न के बराबर था। 1485 ई. में ‘मेलॉरी कृत’, मोर्ट डार्थर नामक गद्य रचना प्रकाशित हुई जिसने अंग्रेजी साहित्य में गद्य विधा को प्रतिष्ठित कर दिया। पर उपन्यास का उदय इंग्लैण्ड में 18वीं शताब्दी के पहले नहीं हुआ। जैसा फ्रांसी भाषाओं में उपन्यास का जन्म हो चुका था, पर उपन्यास का व्यापक रूप से जोरदार प्रचलन 18वीं शताब्दी में ही हुआ। 18वीं शताब्दी का प्रथम चरण अंग्रेजी की उपन्यास

के उद्भव और विकास का प्रथम महान युग हुआ था।”⁷

इस प्रकार उन्नीसवीं सदी यूरोपीय उपन्यास लेखन का स्वर्ण युग था न सिर्फ अंग्रेजी बल्कि फ्रेंच, रूसी, और यूरोप की दूसरी भाषाओं में भी उपन्यास के क्षेत्र में भी कालजयी रचनाएँ सामने आई। अंग्रेजी कथा का अद्भुत विस्तार और विकास उन्नीसवीं सदी में हुआ। अतः हम कह सकते हैं कि प्रभाव प्रेरणा की दृष्टि से उन्नीसवीं सदी की अंग्रेजी कथा विश्व साहित्य के भीतर बेजोड़ है। भारतीय संदर्भ हिन्दी उपन्यास का जन्म भारतेन्दु युग से हुआ। इस युग के लेखकों ने उपन्यास की शक्ति और उसकी बढ़ती हुई लोक प्रियता से परिचित होकर इस क्षेत्र में कार्य करना आरम्भ किया। सन् 1877 ई. में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने ‘भाग्यवती’ नामक उपन्यास की रचना की। कई विद्वान इस हिन्दी का सर्वप्रथम उपन्यास मानते हैं। सन् 1882 ई. में लालाश्रीनिवास ने ‘परीक्षागुरु’ उपन्यास का निर्माण किया। अधिकांश विद्वान इसे हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास मानते हैं। यह सामाजिक यथार्थ चेतना का उपन्यास है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय रंगमंच पर उपन्यास का उदय अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही संभव हो पाया। यद्यपि इसके परिस्थितियाँ पिछले कई वर्षों से (सौ वर्षों) से निर्मित होती आ रही थी। जैसा हम देख चुके हैं। बंगाल में यह जमीन पहले तैयार हुई। बंगाल का उच्च वर्ग अंग्रेजी पद्धति की शिक्षा के फलस्वरूप उपन्यास के सम्पर्क में पहले आया। 1916 ई. में ही कलकत्ता में हिन्दू कॉलेज की स्थापना हुई थी जिससे उपन्यास की पाठ्यक्रम में शामिल थे। पत्र-पत्रिकाओं के विकास ने बंगला गद्य को अंग्रेजी गद्य के गुणों से युक्त किया। धीरे-धीरे तत्कालीन समाज की ओलोचना

गद्यकथा में प्रवेश पाने लगी। डॉ. प्रताप नारायण टंडन के शब्दों में— “इस युग में जनता की विचार परम्परा नयी दिशायें खोज रही थी। जन जीवन के विविध क्षेत्रों में उत्साह था। यह राष्ट्रीय जागृति का युग था इस समय यूरोपीय उपन्यास साहित्य का पर्याप्त विकास हो चुका था। विदेशी उपन्यास के प्रभाव के साथ ही बांगला के उपन्यासों का प्रभाव इस युग में मिलता है।”⁸

भारत में राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक आदि आंदोलनों को प्रेरणा देने का कार्य उनके साहित्य द्वारा हो रहा है और अनेक मौलिक तथा सामाजिक उपन्यासों का निर्माण हो रहा था। डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी के शब्दों में— “यह ठीक है कि यूरोप से बंगाल होकर हिन्दी क्षेत्र में उपन्यास का आगमन हुआ है परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं कि तत्कालीन कथा परम्पराओं के महत्व को नकार दिया जाये। भारतीय कथा परम्पराओं का प्रभाव निश्चित रूप से 19वीं शताब्दी के उपन्यास लेखकों पर पड़ा था। प्राचीन कथा साहित्य में संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपम्रंश के कथा साहित्यों को शामिल किया जा सकता है।”⁹

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रारम्भिक—काल पर विचार किया जा सकता है। इस काल में हिन्दी उपन्यास साहित्य का प्रादुर्भाव पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के कारण हुआ और यह प्रभाव बंगला के उपन्यासों द्वारा हिन्दी में आया। इस काल के उपन्यासों पर बाहरी प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है, परंतु भारतीय कथा साहित्य की शैली की दृष्टि से वह युक्त नहीं है। अतः उपन्यास साहित्य सर्वथा आधनिक युग की देन है। जिसके लिए हिन्दी साहित्य पश्चिम उपन्यासों का ऋणी है।

संदर्भ सूची :

1. सिन्हा, डॉ. सुरेश, हिन्दी उपन्यास : सद्भव और विकास, जगदीश चन्द्रगुप्त, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, नई दिल्ली— प्रथम संस्करण—1965, पृष्ठ भूमिका—1
2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास, लोकभारती प्रकाशन, एम.जी. रोड इलाहाबाद—1, प्रथम संस्करण 1996, तृतीय संस्करण—2006, पृ. 10
3. सिंह, त्रिभुवन, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, संस्करण—1960, पृ. 7
4. त्रिपाठी, डॉ. प्रेमशंकर, हिन्दी उपन्यास और अमृतलाल नागर, श्री बड़ाबाजार कुमार सभा पुस्तकालय, कोलकाता—7, प्रकाशन वर्ष—17 अगस्त 2003 ई. पृ. 5
5. एम. एच. स्टाइन वर्ग (सं.) कैसेलंस एन साइक्लोपीडिया ऑफ लिटेस्टार कैसेल एड कम्पनी लि. लंदन, 1953, डेनिस सौरा नॉवेल विषयक लेख।
6. रमण, रेवती, समकालीन भारतीय साहित्य, अकादेमी की द्वै मासिक पत्रिका, अंक नवम्बर—दिसम्बर—2013, संपादक—विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अंक 170, पृ. 177
7. सत्यकाम, उपन्यास : पहचान और प्रगति, ग्रंथ निकेतन, 87 / 24, राजेन्द्रनगर, पटना—16, प्रथम संस्करण—अगस्त 1985, पृ. 38
8. टंडन, प्रताप नारायण, हिन्दी उपन्यास—उद्भव और विकास, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण—अगस्त 1974, पृ. 81
9. त्रिपाठी, प्रेमशंकर, हिन्दी उपन्यास और अमृतलाल नागर, श्री बड़ाबाजार कुमार सभा पुस्तकालय, कोलकाता—7, प्रकाशन वर्ष 17 अगस्त 2003, पृ. 9

भारतीय कृषि संकट के विविध आयाम

यह एक सुकून भरी खबर है कि हाल के दिनों में भारत में कृषि केन्द्रीय चर्चा का विषय बन गई है। ऐसा इस कारण से संभव हो पाया है कि एक तो कई किसान संगठनों के बैनर तले हजारों की संख्या में कृषि संकट के तत्काल समाधान की मांग के साथ पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसान नेता महेंद्र सिंह टिकैत लाखों किसानों को लेकर वोट क्लब पहुँच कर धरने पर बैठ गये थे, उनकी मांग थी कि गन्ने की फसल को दाम अधिक मिले और बिजली-पानी के बिलों में भी छुट मिले। इस तरह के मांगों को लिए दिल्ली के बॉर्डर पर डटे हुए लाखों किसान यह चाहते हैं कि कुछ महीने पहले लाया गया नया कृषि कानून बिल वापस लिया जाये, लेकिन केंद्र सरकार कहती है कि यह नया किसान बिल किसानों के हित में ही लाई गई है। यह बिल उनके हित में ही बात करती है, क्योंकि इस बिल के माध्यम से किसान अपनी फसल निजी कंपनियों को सीधे सम्पर्क करके बेच सकेंगे और उन्हें ज्यादा आय होगा, लेकिन इस बिल के अन्य कई सारी परेशनियों को देखते हुए किसान-संगठनों ने इस बिल को खारिज करने की मांग शुरू कर दी कि किसानों को इस तरह की बिल की कभी मांग ही नहीं रही। इस तरह देखें तो तीन नए कानून बिल जिनकी वजह से विवाद जन्म लिया, जो इस प्रकार से हैं:-

1. द फार्मर्स प्रोड्यूस ट्रेड एंड कॉर्मर्स (प्रोमोशन एंड फैसिलिशन 2020) इस कानून व्यवस्था के मुताबिक किसान अपनी उपज एपीएमसी (APMC) यानि 'एग्रीकल्चर प्रोड्यूस मार्किट कमिटी' की ओर से अधिसुचित मंडियों से बाहर बिना दूसरे राज्यों को टैक्स दिए बेच सकते हैं।
2. फार्मर्स (एम्पावरमेंट एंड प्रोटेक्शन) एग्रीमेंट आन प्राइस एसोरेंस एंड फार्म सर्विस कानून 2020। इसके अनुसार किसान अनुबंध वाली

संदीप कुमार यादव (शोधार्थी)

अवधेश प्रसाद सिंह विश्वविद्यालय

रीवा मध्य प्रदेश

खेती कर सकते हैं और सीधे उसकी मार्केटिंग कर सकते हैं।

3. इसे शियल कमोडिटीज (एमेंडमेंट) कानून 2020 इसमें उत्पादन स्टोरेज के अलावा आनाज, दाल, खाने का तेल, प्याज की बिक्री को असाधारण परिस्थितियों को छोड़ कर नियंत्रण मुक्त किया गया है।

सरकार का तर्क है कि नये कानून से किसानों को ज्यादा विकल्प मिलेंगे और कीमत को लेकर भी बेहतरीन प्रतिस्पर्धा होगी। इसके साथ ही कृषि बाजार प्रोसेसिंग और आधारभूत संरचना में निजी निवेश को खूब बढ़ावा मिलेगा। लेकिन किसानों को इस बिल से यह भय है कि इससे उनको मिल रहे मौजूदा कृषि सबंधी सुरक्षा भी छीन जाएगी, मौजूदा व्यवस्था को देखते हुए किसानों का कहना ही कि उन्हें ज्यादा मंडियां और कांट्राक्ट फार्मिंग में सुरक्षा देने वाली कानून व्यवस्था चाहिए। इसके अलावा किसान संगठनों का कहना है कि नई किसान बिल नीति के अनुसार उनके फसल उपज के दाम कम मिलेंगे, जिससे खेती की लागत भी नहीं निकल सकेगी। किसान संगठन को शक है कि फिलहाल सरकार की ओर से मिलने वाली न्यूनतम समर्थन मूल्य यानी एमएसपी (MSP) की गारंटी भी खत्म हो जाएगी पर सरकार दावा कर रही है कि नये कानून बिल से किसानों को फसल बिक्री के कीमत के विकल्प ज्यादा मिलेंगे और इसके साथ ही साथ निजी निवेश को भी बढ़ावा मिलेगा। प्रस्तुत आलेख में हम सबसे पहले 'न्यूनतम समर्थन मूल्य' और कृषि कर्ज माफी के उपायों की पढ़ताल करेंगे एवं उसके समाधान के कुछ महत्वपूर्ण आयामों की चर्चा करेंगे— न्यूनतम

समर्थन मूल्य (MSP) न्यूनतम समर्थन मूल्य वह कीमत है, जिस पर सरकार किसानों के उस महत्वपूर्ण फसली उत्पादों को खरीदने का आषासन देती है, जिन्हें किसान वर्ग सरकार के हाथों उस फसल को बेचने की इच्छा रखते हैं। यह सरकार द्वारा बाजार में सकारात्मक हस्तक्षेप करने का तरीका है, इससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि कृषि उत्पादों की कीमत में किसी तेज गिरावट की स्थिति में किसानों को न्यूनतम मूल्य हासिल हो सके, जिससे वे आने—पौने दाम पर अपनी उपज बेचने को मजबूर न हों। यह व्यवस्था इस उद्देश्य के साथ अपनाई गई है कि किसानों को भविष्य में भी उत्पादन और इसके लिए आवश्यक निवेश की प्रेरणा मिलती रहे। जहाँ तक बात न्यूनतम समर्थन मूल्य की निर्धारण प्रक्रिया की है तो इसके निर्धारण हेतु वर्ष 1965 में कृषि मूल्य समिति (APC) की स्थापना की गई थी, जिसे बाद में कृषि लागत एवं मूल्य आयोग (ALP) में रूपांतरित कर दिया गया था। यह एक सलाहकारी संस्था है जो कृषिगत लागत और किसानों को उनके उत्पादों के लिए उचित प्रतिफल दिलाने हेतु न्यूनतम समर्थन मूल्य की अनुशंसा करती है द्य इसके आधार पर आर्थिक मामलों की मत्रिमंडलीय समिति द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा की जाती है। इस समय कुल 24 वस्तुओं पर एमएसपी (MSP) की घोषणा की जाती है, हालाँकि किसान कभी भी आयोग की सिफारिशों और प्रक्रिया से संतुष्ट नहीं रहा। इस असंतुष्टि की सबसे बड़ी वजह है कि ‘स्वामीनाथन आयोग’ की सिफारिशों का लागू न किया जाना। खाद्य आपूर्ति को भरोसेमंद और किसानों की आर्थिक सेहत को बेहतर बानाने के उद्देश्य के साथ साल 2004 में ‘स्वामीनाथन आयोग’ का गठन किया गया था। इस आयोग ने वर्ष 2006 में अपनी रिपोर्ट पेश की और किसानों को उनकी उपज के लागत मूल्य का 50 प्रतिशत मुनाफा देने की सिफारिश की लेकिन इस मामले में एक पेंच फंस गया। दरअसल एमएसपी के लिये

निर्धारित फसलों का आंकलन करने वाले कृषि लागत और मूल्य आयोग ने खेती की लागत की गणना के तीन वर्ग बनाए हैं, जिन्हें ए2, ए2. ए फसल और सी2 में वर्गीकृत किया गया है। फसल लागत गणना को ए2 वर्ग में फसल उत्पादन के लिए किसानों द्वारा किये गये सभी तरह के नगद खर्च जैसे की बीज, सिंचाई, खाद, कीटनाशक और ईधन आदि की लागत शामिल होती है। दूसरे वर्ग ए2 ए फसल में ए2 वर्ग के नगद खर्च के साथ फसल उत्पादन लगत में किसानों के परिवार सहित अनुमानित परिश्रमिक भी जोड़ दिया जाता है। इन दोनों के अतिरिक्त लागत गणना के सी2 वर्ग में कृषि के व्यावसायिक माडल को अपनाया गया है। इसके अंतर्गत कूल नगद लागत और किसान के परिवारिक परिश्रम के अलावा खेती की जमीन का किराया और कूल कृषि पूँजी पर लगने वाला ब्याज भी शामिल किया गया है। किसानों की आर्थिक स्थिति को और बेहतर और मजबूत बनाने के लिए ‘स्वामीनाथन आयोग’ ने इसी सी2 लागत गणना पद्धति की लागत मूल्य के तौर पर स्वीकार करने की सिफारिश करते हुए किसानों की लागत मूल्य का 50 प्रतिशत मुनाफा देने की सिफारिश की किन्तु चिंता की बात यह है कि अभी तक किसी सरकार ने इन सिफारिशों को अभी तक लागू नहीं किया है। एमएसपी से जुड़ी हुई समस्याएं यहीं समाप्त नहीं होती। मसलन पहली बड़ी समस्या यह है कि एमएसपी पद्धति ने किसानों की बेहतरी के साथ एक बड़े माध्यम फसलों के विविधिकरण को बुरी तरह से हतोत्साहित किया है, चूँकि एमएसपी प्रणाली मुख्य फसलों (अनाज, दाल, तिलहन) के पक्ष में है। अतः किसान वर्ग ज्यादातर इन्हीं फसलों की उपज की ओर आकर्षित होते हैं। आंकड़ों के आईने में अगर देखें तो हम पाते हैं कि मुख्य फसलों (आनाज, दाल, तिलहन) के तहत सकल फसल क्षेत्र का 77% भाग है परन्तु ये फसलें फसल क्षेत्रक के कुल उत्पादन में केवल 41%

पैरोकर

योगदान देती है जब कि गौर करने वाली यह बात है कि उच्च मूल्य वाली फसलों (फल, सब्जियां, फाइबर, मसाले और गन्ना) जिनके तहत सकल फसल क्षेत्र का मात्र 19% है। इसके अलावा भी लगभग 41% उत्पादन मूल्य का योगदान दिया जाता है इसके अलावा दूसरी समस्या यह है कि एमएसपी नीति देश में राज्यवार विभेद को गहराने का कार्य किया है इस प्रणाली का अधिकतर लाभ कृषि की दृष्टि से विकसित पश्चिमोत्तर भारत और पश्चिम भारत के राज्यों को मिला है। पूर्वी भारत के राज्यों तक इसकी प्रभावी पहुँच अभी भी सुनिश्चित नहीं हो पाई है। इसके अतिरिक्त एमएसपी नीति की एक बड़ी समस्या यह भी है कि बमुशिकल 6% किसानों तक इसका लाभ पहुँच पाता है। एनएसएसओ के एक सर्वे के मुताबिक अधिकांश लघु और सीमांत किसान इस व्यवस्था से ही अपरिचित हैं। साथ ही एक मुशिकल यह भी है कि सरकार एमएसपी कि घोषणा तो कर देती है, लेकिन सरकारी एजेंसियों के खरीदारी वाले केंद्र राज्यों में सक्रीय नहीं होती दिखाई देती है। क्या कृषि ऋण माफी संकट का समाधान है? इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि सीमित अवधी में ऋण माफी का उपाय किसानों के लिए वरदान सरीखा है, क्योंकि कृषि व्यवस्था पर छाये हुए संकट के बीच यह उन्हें ऋण दायित्यों से मुक्ति दिला देता है, लेकिन विद्वानों के बीच इस बात को लेकर मतभिन्नता पाई जाती है कि यह विकल्प अपनाया जाना चाहिए या नहीं? यह विकल्प नहीं अपनाने वाले समर्थकों का पहला तर्क यह है कि कृषि ऋण माफी बैंकों की 'बैलेंस शीट' के संतुलन को बिगाड़ने का कार्य करेगी, उनके अनुसार पहले से संकटग्रस्त चल रहे बैंकों के लिए यह उपाय और भी संकटग्रस्त कर देने जैसा होगा। दूसरा आक्षेप यह है कि ऋण माफी इमानदार ऋण संस्कृति को नुकसान पहुंचाती है और यह निर्धारित समय सीमा में अपना ऋण चुकता कर रहे लोगों को हतोत्साहित करेगी, साथ ही यह

कदम भविष्य में किसान व बैंक के रिश्ते को कमजोर करेगी, जिससे किसानों को बैंक से कृषि के लिए ऋण मिलने में समस्या उत्पन्न होगी। कृषि ऋण माफी के विरोधियों का कहना है कि सरकारों को ऋण माफी जैसी सस्ती लोकप्रिय राजनीति के हथकंडों को अपनाने की बजाय कृषकों के लिए लाभदायक दीर्घकालिक कदम उठाने चाहिए, जो उनके जीवन को गरिमामयी बनकर उन्हें एक सफल उधमी के रूप में रूपापित करेगा। जहाँ तक बात कृषि ऋण माफी के समर्थकों की है तो उनका पहला तर्क है कि प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती बारंबारता और मानसून की बदलती प्रकृति के कारण फसल बर्बादी की समस्या आम है। संकट से घिरे स्थिति में कृषक ऋण नहीं छूका पाते और कर्ज के दुष्क्र में फंस जाते हैं। ऐसे में राज्य का यह कर्तव्य है कि अपने नागरिकों को संकट से उबरने में जो कुछ भी संभव हो वह करे। कृषकों के संदर्भ में ऋण माफी उसी प्रयास के तहत जायज है। इनका दूसरा तर्क है कि कृषि में इनपुट लागत बढ़ती जा रही है, जबकि निर्गत आउटपुट के रूप में किसान अपनी उपज का अत्यंत कम मूल्य प्राप्त कर पाते हैं, जिससे कृषि उनके लिए घाटे का सौदा बनती जा रही है इस दुष्क्र से परिमाण कृषकों की आत्महत्या की रूप में बारम्बार सामने आ रही है, ऐसे में ऋण माफी के माध्यम से इस दुष्क्र को तोड़ा जाना आवश्यक है। ऋण माफी चाहने वालों का तीसरा तर्क यह है कि जब सरकार उद्योगों 'बेल आउट पकेज', 'राईट ऑफ', 'इंसेंटिव' आदि उपायों से ऋण में राहत देती है, तो अर्थव्यवस्था की ऋण कृषि के उठाये गये इस कदम पर प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिए, साथ ही, समर्थकों का एक तर्क यह भी है कि कृषकों का माफ किया गया ऋण एक मायने में उद्योगों के सुगम, आर्थिक चक्र का मध्याम ही बनता है, क्योंकि किसानों की खर्च करने की शक्ति उद्योगों के लिए बाजार निर्माण करती है।

कैसे संवरेगी कृषि : कृषि संकट इतना व्यापक और विस्तृत है कि अब इसका कोई एक मात्र साधन संभव नहीं दिखाई पड़ता, किन्तु समस्या कितनी भी बड़ी हो अगर मजबूत इच्छा शक्ति हो तो पार पाया ही जा सकता है। इस दिशा में शुरुवात किसानों को कुछ तत्कालिक राहत देकर की जा सकती है। तत्कालिक राहत के अंतर्गत सबसे पहला कदम कृषि ऋण माफी का उठाया जा सकता है। यह सही है ऋण माफी में कई किन्तु, परन्तु जुड़े हैं लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि फसलों के वाजीब मूल्य न मिलने, फसलों के नष्ट होने, प्राकृतिक आपदा आदि के कारण करोड़ों किसान परिवार संकट में हैं और वे इस स्थिति में नहीं हैं कि अपना ऋण अदा कर सके। ऐसे में अगर सरकार उन्हें ऋण माफी की राहत नहीं देती है तो वे ऋण के दुष्क्र के कभी उबर नहीं पाएंगे। यहाँ एक चीज का अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऋण माफी के दायरे में अति जरुरत मंद किसान ही शामिल किये जाए न कि इसे सबके लिए उपलब्ध करा दिया जाये, ऐसा न होने पर सरकार का वित्तीय बोझ तो बढ़ेगा ही साथ ही ऋण आदायगी की ईमानदार संस्कृति पर भी कुठाराघात हो जायेगा। तत्कालीन ऋण माफी के साथ दूसरी राहत सफल बीमा योजना में दी जानी चाहिए। कृषि के इस संकट काल में किसानों को एक रूपये में फसलों का बीमा प्रदान किया जाये साथ ही यह सुनिश्चित किया जाये की देश के सभी किसान फसल बीमा की जद में आ जाये सरकार को यह भी ध्यान रखना होगा कि किसानों के लिए चल रही फसल बीमा योजना निजी कंपनियों के मुनाफा कमाने का जरिया न बने बल्कि यह किसानों के कल्याण का माध्यम बने, साथ ही सरकार को जैविक कृषि व जियम फसलों के विकल्पों पर शीघ्रता से विचार करना होगा, क्योंकि यह किसानों की लागत घटा कर आय बढ़ाने के सशक्त उपाय माने जा सकते हैं। कृषि कल्याण रणनीति के तहत इस क्षेत्र में आधारभूत ढाँचे को

आधुनिक बनाने हेतु सार्वजनिक निवश में भारी वृद्धि करनी होगी। साथ ही सरकार की कोशिश होनी चाहिए की यह क्षेत्र निजी निवेशकों की भी पसंद बने भण्डारण, वेयर हाउस परिवहन, सड़क बिजली, सिंचाई आदि क्षेत्रों में यदि निवेश बढ़ता है तो यह कृषि उन्नति में दीर्घ काल तक सहायक होगा, खासतौर पर सिंचाई क्षेत्र में निवेश तुरंत बढ़ाना चाहिए, क्योंकि कृषि योग्य भूमि का बड़ा हिस्सा असिंचाई है, इस सम्बन्ध में भारत को इजराइल से सिंचाई की आधुनिक प्रणालियों के बारे में सीखना चाहिए और उन्हें अपनाने हेतु किसानों को प्रोत्साहित करना चाहिए, कृषि संकट से निवारण का एक और कदम बाजार और मूल्य श्रृंखला (वैल्यू चौन) से सम्बंधित है आये दिन खबरे आती हैं कि रुपया 20 से 25 रुपया प्रतिग्राम तक की कीमत वाले कृषि उत्पादों को किसान से रुपया 1-2 प्रतिकिलो ग्राम में खरीदा जा रहा है। इसके विपरीत जिस दिन यह व्यवस्था स्थापित हो गई कि कृषि उत्पादों की किसानों को मिलने वाली कीमत और उसकी बाजार में कीमत का अंतर जो मामूली है, कृषि के अच्छे दिन आने शुरू हो जायेंगे ऐसी व्यवस्था तभी संभव है जब 'खेत से प्लेट तक' के प्रबंधन का उपाय अपनाया जायेगा। इसके लिए सबसे जरूरी है कि सरकार पच्च फसल प्रबंध, वेयर हाउस एवं भण्डारण गृहों का निर्माण और कृषि उत्पादों के परिवहन की समस्या का प्राथमिकता के स्तर पर समाधान तलासे साथ ही सरकार को खेत तक पहुँच सुनिश्चित करके उत्पादों का संग्रह, उत्पादों का विक्रय हेतु स्थानीय बाजारों के विकास, कृषि मंडियों में आवश्यक सुधारों को आगे बढ़ा कर उन्हें आधुनिक विपणन केंद्र के रूप में स्थापित करने और कृषि उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा देने जैसे कदम प्रभावी रूप से उठाये, यह तभी संभव है जब सरकार ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क के निर्माण, बिजली की अबाध आपूर्ति, मंडियों का निर्माण, संचार तकनिकी से हर किसान का जुड़ाव आदि सुनिश्चित कर पायेगी। अब जरुरत

है कि ऐसे कदम उठाये जाएँ जिनसे इस मुनाफे का बड़ा हिस्सा किसानों तक पहुंचे, यह तभी संभव है जब सरकार देश की भौगोलिक विविधता एवं कृषि उत्पादों की क्षेत्रीय प्रकृति को ध्यान में रखते हुए गांव, ब्लाक, तहसील व जिला स्तर पर खाद्य प्रसंकरण इकाइयों की स्थापना या तो खुद करें या किसानों को ऐसी इकाइयों को स्थापित करने के लिए सहायता व प्रोत्साहन दे, सस्ती दर पर आसानी से ऋण मिल सके, जरूरी कौशल परीक्षण दिया जाये और इनके उत्पादों के विक्रय हेतु नीचे से उपर तक विपवन शूंखला विकसित किया जाये, बाजार सुधार के इसी क्रम में एक अन्य उपाय कृषि मंडी समितियों में सुधार से जुदा हुआ है, मौजूदा हाल यह है कि मंडियों में न तो जरूरी आधारभूत सुविधाएँ उबलत्थ हैं, न ही इनका नियमन सही से हो पा रहा है। ये भट्टाचार के एक बड़े अड्डे में तब्दील हो चुकी हैं, चूंकि किसान अपनी उपज इन मंडियों में बेचने को विवास है अतः इस व्यवस्था की प्रत्यक्ष मार का वह शिकार हो रहा है। सरकार को चाहिए कि मंडियों में आधुनिक आधार भुत ढाँचे को विकसित करे, बिचालियों की भूमिका सीमित करें, सभी मंडियों को राष्ट्रीय स्तर पर एककृत दाँचे से जोड़ा जाये और किसानों को यह सुविधा दी जाए कि वे अपने उत्पाद सीधे थोक व फुटकर Q k Kj ; kd ksc p | d A bZu 6 (e-name) की शुरुआत इस दिशा में एक बढ़िया कदम है, किन्तु इसे प्रभावी बानने के लिए अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। दीर्घकालीन कदमों के अंतर्गत यह एक बड़ा उपाय होगा कि कृषि को एक सम्मान जनक पेशा बनाकर इसके प्रति युवाओं की मानसिकता में परिवर्तन लक्षित होना चाहिए, दरअसल खेती लगातार धाटे की सौदा बनती चली गई जिससे इस क्षेत्र में कैरियर बनाने की चाहत युवा मन में पनपती ही नहीं यह सूरते आसानी से बदलने वाली नहीं है। इसके लिए कृषि शिक्षा के ढाँचे में आमूलचुल परिवर्तन जरूरी लगता है। शोध रूप विकास कार्य को गति देने की जरूरत है। सार्वजनिक क्षेत्र में कृषि संबंधी रोजगार के अवसर बढ़ाने

होंगे और ग्रामीण क्षेत्र में बुनियादी संरचना को आधुनिक बनाना होगा। कुल मिलकर उद्योग क्षेत्र में जैसे 'एंटरप्रेन्योर' को निर्मित व पोषित करने पर बल दिया गया है, वैसे ही कृषि क्षेत्र में 'एग्रीप्रेन्योर' बनाने के लिए प्रयास करना होगा। सेवा क्षेत्र का विस्तार करते हुए इसमें नये अवसर तलासने होंगे यह कदम कृषि क्षेत्र के अधिशेष कर्म बल के उत्पादक कार्यों में नियोजन सुनिश्चित करेगा और कृषि पर निर्भर लोगों की संख्या में कमी लायेगा, जैसे—जैसे कृषि क्षेत्र पर निर्भर लोगों की संख्या कम होती जाएगी वैसे—वैसे इसमें संपन्न लोगों की आय बढ़ती जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. संजीव, 'फांस', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015
2. पंकज सुबीर, 'अकाल में उत्सव', शिवना प्रकाशन, मध्य-प्रदेश, संस्करण 2016
3. शिवमूर्ति, 'आखिरी छलांग' संस्करण 2008
4. किसान पटनायक 'किसान आंदोलन दशा और दिशा', राजकमल प्रकाशन
5. वीरभारत तलवार 'किसान राष्ट्रीय आंदोलन और प्रेमचंद 1918–1922'
6. संपादक संजय गुप्ता, दैनिक जागरण 'राष्ट्रीय संस्करण' दैनिक सामचारपत्र
7. जनसत्ता (दैनिक अखबार, संपादक मुकेश भरद्वाज)
8. विकिपीडिया
9. करेंट अफेयर्स टुडे, दृष्टि पब्लिकेशन, नई दिल्ली



कहानी

शुभचिंतक

— डॉ. उषा शॉ

लाश श्मशान में धू धू कर जल रही थी। आसपास परिजन—पुरजन मौन खड़े थे। अचानक उन्हीं में से कोई बोल उठा— चल यार। चाय पीते हैं। अभी तो लाश जलने में देर है। वे चाय की दूकान की ओर बढ़ गए। जलती लाश का एक अंग अचानक नीचे गिरा। श्मशान कर्मचारी दूर बैठा अपनी हथेलियों को रगड़ रहा था। शायद खैनी बना रहा था। दौड़ कर परिजन ने इशारा किया, श्मशान कर्मचारी बड़ी लापरवाही से उठा और धीरे—धीरे लाश की ओर बढ़ा और टांग उठा कर अग्नि के हवाले कर दिया। फिर बड़ा सा बांस उठा कर लाश को कोंचने लगा। टांगों, हाथों को इधर—उधर उलट—पलट करने लगा। परिजन चिल्लाए “अरे ! ये क्या कर रहे हो ? उसने बहुत ही रुखाई से जवाब दिया। एक ही लाश को लेकर बैठे रहेंगे क्या ? वहां पीछे देखिए लाशों की कतार खड़ी है। बाबूजी ! हमको अपना काम जल्दी—जल्दी निपटाना है। हमें अपना काम करने दीजिए। एक तो सही ढंग से आप लोग पैसा नहीं देते हैं और कहते हैं कि लाश जतन से ज ला। जो मर गया उसका क्या ? उसका हाथ जले या पैर जले या न जले। मरने वाला तो मर गया। देखने आ रहा है कि वह साबूत जला या नहीं ? बहुत नखरा करते हैं— बाबू जी आप लोग।” श्मशान कर्मचारी चिल्ला उठा— अवाक् ! परिजन अवाक् हो उसकी ओर देख रहे थे कि अचानक किसी का मोबाइल बज उठा। हाँ, हाँ बोलो। हाँ, और दो घंटे लगेंगे लाश जलने में। नहीं ! नहीं ! पता नहीं! भींगी लकड़ी दी होगी सालों ने। हाँ, ठीक है— तुम निकलो, मुन्ना कुछ खाया की नहीं ? देखों, उसे भूखा मत रखना, कुछ खिला देना। ... और तुमने चाय—वाय पी की नहीं ? वे लोग कुछ

नहीं खिलाये—पियाये। अच्छा ठीक है मैं फोन रखता हूँ तुम टैक्सी लेकर घर पहुंचों, बस में मुन्ना को तकलीफ हो जायेगी ऐं क्या ? हाँ, ठीक है ... जो मरा है वह भी तो किसी का बेटा है। मात्र चालीस वर्ष की आयु में कैंसर से पीड़ित हो इस दुनिया से कूच कर गया। छोड़ गया अपने पीछे तीस—बत्तीस वर्षीया सुंदर पत्नी और दो बच्चों को।

उधर घर में बूढ़ी मां दहाड़े मार कर रो रही थी। पत्नी के आँसू थमने का नाम नहीं ले रहे थे। ढाई साल का बेटा आयुष रट लगा रहा था, “पापा को बुलाओ, गाड़ी में पापा कहाँ गए ? पापा को बुलाओ। उसकी बुआ आगे बढ़कर उसे गोद में ले—बहलाने लगी। घर में भाभियां, चाचियां, मामियां सभी आई थीं पर, किसी ने बूढ़ी माँ को तो नहला दिया और एक किनारे जा कर बैठ गई, जब उसकी पत्नी (जो विधवा हो चुकी थी) को नहलाने की बारी आई तो सब एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। सधवा स्त्रियाँ विधवा को कैसे नहलाएं ? आखिरि, बुआ ने आगे बढ़कर उसे पकड़ कर आंगन में लाकर पीढ़ा पर बैठाया और चली गई मुहल्ले की विधवा औरतों को बुलाने। बहुत अनुनय—विनय पर दो—तीन विधवा स्त्रियाँ आई और उसे नहलवाया। प्रश्न उठा कि उसके उतारे कपड़ों का क्या होगा ? लखिया चाची लपक कर आगे बढ़ी और बोली— “अरे ! का होगा। हम ले जायेंगे, कितनी बढ़िया और मजबूत साड़ी है, पहन कर हक लगा देंगे।”

“अरे ! नहीं नहीं, इस पर तो नाऊन का हक बनता है। तुम कैसे ले जाओगी जायेगा और उसका भी, अरे ! समाज में ऐसे ही

लखिया ? मांगिया दादी ने लगभग डॉट्टे हुए कहा, ‘जो नियम है वही होगा, जा ! रे गोरका, नाऊन चाची को बुला ला’ दादी ने अपने नाती से कहा, गोरका चला गया। लखिया चाची अपना पैर पटकते हुए मंगिया दादी को गरियाते हुए निकल गई। पत्नी का रोना बंद हो चुका था, शायद, दिन भर रोते—रोते थक चुकी थी बूढ़ी माँ को लोगों ने पकड़ कर पलंग पर लिटा दिया था।

इतने में सुतनी भाभी कटोरी में दाल—चावल लेकर आई और उसके ढाई साल के बच्चों को पुचकार—पुचकार खिलाने लगी और दुःख प्रकट करने लगी “कितना अभागा है, छोटा—इतनी सी उमर में बाप को खो दिया, हाय रे ! किस्मत ! इसको क्या पता कि क्या हुआ है ? बेसहारा, लावारिस हो गए हैं—दोनों भाई—बहन, अब कौन देखेगा ? का होगा इनका भविष्य ? ये ! मुनिया ले तू भी खा ले दो कौर, पता नहीं लाश अभी कितनी जली है, कब तक ऐसे रहेगी ! आ ! खा ले दो कौर” लड़की ने इंकार कर दिया। फिर रोने की आवाज, पत्नी ने रोना आरम्भ कर दिया था ... मंगिया दादी ने सुतनी भाभी को जोर से डांटा—अरे ! का कह रही है ? बक रही है क्या ? ऐसा बोल—बोल के काहे उसका कलेजा जला रही है, जा ! तू जा, बच्चा को कोई और खिला देगा, शुभचिंतक बनने आई है कि जले पर नमक छिड़कने। जा तू यहाँ से—सुतनी चाची लड़ने के मूड में आ गई। अरे दादी जबान संभाल कर बात करो, तुम यहाँ किस मकसद से आई हो हम नहीं जानते हैं क्या ? गदा—बिछौना तो तुम ही लेकर जाओगी, बड़ी आई शुभचिंतक, चापलूस कहीं की ... कहते हुए आँखें तरेर कर सुतनी भाभी कटोरी पटक कर चली गई। इस बीच बहुंए अपने—अपने पतियों को फोन लगा—लगाकर परेशान कर रही थी।” और कितनी देर है जी !”

कल मुनिया का फीस जमा करवाना है नहीं तो उसका नाम कट जायेगा, जल्दी आइए—उधर से आवाज आई “अरे ! अभी लाश जली नहीं है, और गंगा स्नान भी करना है ? ” “अरे नहीं आप घर पर ही स्नान कर लेना बस जल्दी चले आइये “दूसरी बहू अपने पति को समझा रही थी।” काहे जी ! फोन क्यों नहीं उठा रहे हैं ? सुनिये ! देखिये श्मशान घाट पर किसी लाग लपेट में मत पड़ियेगा समझे न, पैसा—कौड़ी संभाल के, कोई रूपया—पैसा खरचने का दरकार नहीं है समझे न | मझली बहू तो तो हृद कर दी “का जी और कितना देर लगेगा, अरे फ्लैट पर चलना है कि नहीं ? वहाँ श्मशान घाट में जाकर चिपक गए क्या, आपको पता है कि नहीं, काम वाली बाई आकर लौट जायेगी तो सारा बर्तन—भांडा हमारे कपार पर पड़ेगा, दोनों बच्चे भी हर्मी लोगों के सिर के उपर बोझ बनेंगे। एक सुबह से यहाँ आये हुए है, अभी तक एक कप चाय नसीब नहीं हुई है ? क्या आफत है ? रोना—धोना अलग चल रहा है मेरा तो दिमाग भन्ना रहा है। सही में कह देते हैं एक घंटा में नहीं आये तो हम अकेले बच्चों को लेकर फ्लैट के लिए निकल जायेंगे। जान आफत में फंस गयी है सही में।”

बड़ी बुआ वही चबूतरा पर सर पकड़ कर बैठ गई। इतने में बाल्ला चाची आकर बुआ के बगल में बैठ गई और हालचाल पूछने लगी! कैसी है रे बेटी, अकेली आई है—बाल—बच्चा सब ठीक है न ? बुआ ने अपना सर हिलाया तो बल्ला चाची लगभग फुसफुसाते हुए बोली “अरे बेटी ! एक बात सुन, तुमरा छोटा भतीजा का तो पत्नी के साथ अनबन हो गई है, सुनते हैं कि तलाक हो गया है, तो काहे न संझली बहु का सगाई उसी के साथ करवा दिया जाय।” देखों, हम बात पर एक बात कह रहे हैं ई तो बहुत भलाई का काम है, इसका भी घर बस

पैरोक्कर

चढ़ा ओढ़ा कर घर की बात घरे में रह जाती है, समझी न हम का कह रहे हैं ? “तुमरा भतीजा तुमरे बात मानेगा उसको समझा बुझाके ई काम करवा लोगी न बेटी तो बहुते अच्छा होगा। अच्छा हम चलते हैं, ई भलाई का बात दिमाग में आया सो कह दिए।”

बुआ का दिमाग स्नन हो गया यह सोच कर कि अभी तो उसकी लाश ठंडी भी नहीं हुई होगी और इस तरह के सुझाव, वाह रे ! शुभचिंतक ! शायद शुभचिंता व्यक्त करने का भी एक समय होता है, पर इस समय ? ये कैसे शुभचिंतक हैं ? शुभचिंतक है या ड्रामेबाज ? और बुआ दोनों हाथों से अपना सर पकड़ वहीं बैठ गई।

— — —

स्वारथ को सब कोउ सगा,
जग सगलाही जांणि/
बिन स्वारथ आदर करैं, सो हरि
की प्रीति पिछांणि//

— कबीर दास

सत्य जिसे सब इतनी आसानी से अपनी-अपनी तरफ मान लेते हैं, सदैव विद्रोही सा सराहा है। तुम्हारे दृष्टि में मैं विद्रोही हूँ क्योंकि मेरे सवाल तुम्हारी मान्यताओं का उल्लंघन करते हैं।

— कुंवर नारायण

हमारे अंदर सबसे बड़ी कमी यह है कि हम चीजों के बारे में बात ज्यादा करते हैं और काम कम करते हैं।

— पं. जवाहरलाला नेहरू

कई लोग इसलिए भले कहलाते हैं कि इतने डरपोक होते हैं कि अपने अधिकारों के लिए कभी नहीं खड़े हो सकते।

— हरिशंकर परसाई

कुदरत ने मर्द और औरत में फर्क कम दिए हैं और समानताएं ज्यादा। मर्द और औरत में फर्क केवल प्रजनन के लिए दिए हैं, ये कुदरत ने नहीं बताया था कि कौन नौकरी करेगा और कौन खाना बनाएगा।

— कमला भसीन

वह
 साधारण पोशक धारणी
 गर्व से मंडित,
 श्रम से सज्जित
 चली अपने कर्म पथ पर।
 लोगों से नजरें बचा कर
 ताना कसते निगाहों से,
 खुद को
 साड़ी के पल्लू से समेट कर
 जिम्मेदारियों की गटुरी लिए,
 चली अपने कर्मपथ पर।
 संघर्ष के मैदान में
 बढ़ती जाती अविरल
 मेहनत और मजदूरी की आँच पर
 दो जून रोटी का सपना लिए
 चली अपने कर्म पथ पर।
 हौसला बुलंद कर
 वस्त्र को तन से कस कर,
 कर में हथोड़ी और कुदाल लिए
 मजदूरी करने को आतुर
 करती ईट—पत्थर पर प्रहार
 वह श्यामल तन यौवन
 चली अपने कर्म पथ पर।
 रोजमरा के जीवन में
 परिश्रम रूपी ढ़ाल लेकर
 हर पग बढ़ाती
 नवीन ताकी ओर
 कर्म को ही धर्म बना कर
 आत्मनिर्भरता का संकल्प लिए
 चली अपने कर्म पथ पर।

— नीतू कुमारी

कॉलेज शिक्षिका, सरोजिनी नायूड कॉलेज फॉर वीमेन, पं. बंगल

“पता नहीं कहां थी
 ये चिड़ियां
 जो लोट रही हैं कतार की कतार”
 काफी देर से सूर्यास्त
 देखने के बाद वह बोला
 ‘दूर से मधूकखी के छते की भाँति
 दिख रहा चिड़ियों का यह समूह
 अब हमारी तरफ क्यों नहीं आता ?
 जब उसने कहा
 ‘अब हमारी तरफ क्यों नहीं आता’
 तो एक क्षण को लगा
 जैसे इस प्रश्न का उत्तर
 वह स्वयं है
 उसके मुख पर
 साफ—साफ चिंता की कुछ लकीरें
 ऐसा लग रहा था
 जैसे स्वयं उसी ने कुछ गुनाह किया है
 जिससे चिड़ियां अब नहीं आती।
 फिर भी उसने मुझसे पूछा
 ‘तुम बताओ
 अब ये चिड़ियां इधर क्यों नहीं आती
 चार दिन से रखी ये रोटी
 अब ये चिड़ियां इधर क्यों नहीं आती
 जैसा ही उसने कहा
 मुझे लगा ये अप्रत्याशित सवाल ?
 मैं सोचने लगा
 जवाब तो सूझ नहीं रहा था मुझे
 पर कुछ—कुछ लग रहा था
 उसी की तरह
 मैं भी
 स्वयं जवाब हूं इस सवाल का !

— गणेशी लाल

ये
पर्याय है उनका
जिनकी जान है
जिंदगी है
और जहां भी
ये कौन हैं ?
पशु हैं
पंछी हैं
या प्राणी हैं
ना कि
दोपाया
चौपाया
या कुछ और
तो
दखल से
बेदखल क्यों ?
उत्पत्ति में
चौपाया था मनुष्य भी
अब दोपाया है
लेकिन !
है ओर प्राणी ही
प्राणी विज्ञान में
वास है उनका
जल जंगल ज़मीन !

गणित का गुणा
बहुत ही विचित्र है न
जहां संख्या भाज्य है
वहां परिणाम
जहां संख्या अभाज्य है
वहां समस्या ही समस्या ?
लेकिन ये संख्याएं
भाज्य होते हुए भी अभाज्य है
क्योंकि ?
आज भी वहां की मिट्टी में
सना है लाला लहू उनके
जो बेक़सूर हैं
जनमंत्र में
पर उन बेक़सूरों को
अपने पक्ष में रखने के लिए
आज भी आमादा हैं
भाज्य अभाज्य के
वे विभाजित हाथ विभाजन में
क्या एक और लहूलुहान के लिए ?
या
फिर उस लहू बदबू के लिए
जो उड़ रहे हैं अभी भी
हमारे नासिक रंधों से होकर निरंतर
लेकिन
अब हम गम्धित नहीं हो रहे
बल्कि सुगंधित हो रहे हैं बार—बार

84 बटा 2002 के

— डॉ. रमेश यादव

पैरोकार

Back Cover : 50,000/- (Colour)	Central Page Both Side : 1,00000/- (4 Page Colour)
Back Cover Inside : 35,000/- (Colour)	Central Page Front : 60,000/- (2 Page Colour)
Front Cover Inside : 40,000/- (Colour)	Central Page Back : 40,000/- (2 Page Colour)
Inside Full Page Colour : 20,000/-	Inside Full Page Black White : 15,000/-
Half Page Black & White : 10,000/-	Quater Page Black & White : 5, 000/-

साहित्यिक आन्दोलन में भागीदार होने को पैरोकार का आह्वान

औद्योगीकरण के मशीनी युग कों बहुत पीछे छोड़कर आज हम डिजीटल युग के पायदान पर खड़े हैं, जहाँ शब्द, विचार और विवेक के लिए खतरा पैदा हो गया है। ऐसे में व्यक्तिगत प्रयास व सीमित साधन में वैचारिक मंच तैयार करने के उद्देश्य से 'पैरोकार' का प्रकाशन किसी बड़े खतरे से जूझने से कम नहीं है। लेकिन पत्रिका के हर नए अंक के प्रति पाठकों ने जो उत्साह दिखाया उससे हमें ताकत मिली है और अब हम खतरे से जूझने में अकेला महसूस नहीं करते हैं। हम और मजबूती के साथ उभरे हैं। डिजीटल युग में शब्द के अस्तित्व को लेकर एक तरह से संकट पैदा हो गया है। लेकिन शब्द का आज भी मूल्य है और इस मूल्य को बचाये रखने के लिए पैरोकार साहित्यिक आन्दोलन का आह्वान करता है जिसमें आप सबकी भागीदारी अहम है। साहित्य की विभिन्न विधाओं को नये कलेवर में पाठकों के समक्ष लाने के लिए पैरोकार दृढ़ प्रतिज्ञ है। लेकिन बिना आपके सहयोग के यह सम्भव नहीं है। रचनात्मक आन्दोलन को तेजधार देने के लिए आप लोगों का आर्थिक सहयोग अपेक्षित है। पैरोकार के इस साहित्यिक आन्दोलन को आगे बढ़ने के लिए हम आप से मात्र 400 रुपये की वार्षिक सदस्यता लेने की अपील करते हैं। एक वर्ष में आपको पैरोकार की चार प्रतियाँ मिलेगी जिसमें सामान्य मूल्य से अधिक कीमत पर कई संग्रहणीय विशेषांक शामिल होंगे। आशा है कि आप पैरोकार का वार्षिक सदस्यता ग्रहण करेंगे और अपने परिचितों को भी सदस्य बनाकर इस साहित्यिक और रचनात्मक आन्दोलन में समान रूप से सहभागी होंगे।

- संपादक

पैरोकार सदस्यता फॉर्म

मैं.....

पता.....

पिनकोड़.....मो.....ई.मेल

पैरोकार की वार्षिक सदस्यता के रूप में 400, त्रिवार्षीकी 1000, विशेष सहयोग 2000 रुपये नगद / चेक / ऑन लाइन भुगतान कर रहा हूँ। संस्थाओं के लिए 500 रुपये वार्षिक।

A/c. Details for Payment of Advertisement and Subscription.

Axis Bank
Dunlop, Kolkata (W.B) Branch
A/c Name : Pairokar
A/c No. 913020025478023
IFSC : UTIB0000236